*दि इंडिपेंडेंट इंस्टिट्यूट*_____1 जनवरी, 1985_____रिसर्च आर्टिकल

संकट, बड़ी सरकारें और वैचारिक परिवर्तन

Crisis, Bigger Government and Ideological Change

अनिवर्ती घटनाक्रम (रैचिट फेनॉमेनन) पर दो परिकल्पनाएं

Two hypotheses on Ratchet Phenomenon

आर्थिक इतिहास में अन्वेषण

Exploration in Economic History

-रॉबर्ट हिग्स (Robert Higgs)

अपने बुतपरस्त दुश्मन का खुलकर जिक्र करो
क्योंकि रोम खतरे में है
अगर तुमने इस चिंघाड़ते हिंसक जानवर को खुला छोड़ा तो;
चार सादे से शब्दों में बयान करो
इस दैत्य का जो उस पर मंडरा रहा है
लेकिन अगर हमारे भिखारी इसकी कीमत मांगें तो
उनको किसी पंछी की तरह झिड़ककर दुत्कार दो;
दुस्साहस दिखाओ, पोप और सीजर भी जानते हैं
भरोसे और सम्मान की कीमत?

-डब्ल्यू. एच. ऑडेन[1]

आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था 20वीं सदी के अमेरिका के जबर्दस्त रुपांतरण का प्रतीक है। आर्थिक इतिहासकार इस महान घटनाक्रम की अनदेखी नहीं कर सकते। हालांकि इस दिशा में हाल तक के विश्लेषणात्मक प्रयास सामान्य से रहे हैं। सभी बेझिझक यह मानकर ही चलते थे कि एक तेजी से उभरती "पूंजीवादी," शहरी-औद्योगिक अर्थव्यवस्था अंततः एक बड़ी और हस्तक्षेप करने वाली सरकार को ही जन्म देती है। हाल ही में, सरकार के विकास के कुछ विश्लेषकों ने कुछ और ज्यादा स्पष्ट परिकल्पना पेश की है, कुछ ने तो अपने तर्कों को पहले से मौजूद आंकड़ों (बोरशेरिडंग 1977, मेल्टजर और रिचर्ड 1978, पेल्ट्जमैन 1980, वेट्टर 1979)[2] के तराजू में आंकने की कोशिश की है। इस बारे में उपलब्ध अधिकांश सामग्री मशीनी किस्म की है और यह मिश्रित अर्थव्यवस्था के एक वास्तविक ऐतिहासिक प्रक्रिया होने को लेकर भी कोई स्पष्टता नहीं दे पाती। इस प्रक्रिया की वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन करने वाले-पहले से मौजूद चंद आधी-अधूरी बातों के विपरीत-तीन महत्वपूर्ण पहलुओं का जिक्र करते हैं-पहला, इसमें केवल ज्यादा खर्च, कर और सरकार से रोजगार ही शामिल नहीं है, बल्कि आर्थिक मामलों के फैसले यह ज्यादा आधारभूत तरीके से यह सरकार के हाथों में देती है। दूसरा, अधिकारों में इजाफे का यह सिलसिला सामाजिक संकटों के चंद प्रसंगों के कारण पेश आया था, खासतौर पर दूसरे महायुद्ध और व्यापक मंदी के दिनों में। तीसरा सरकारी हस्तक्षेप बढ़ने के साथ ही मौजूदा विचारधारा में भी बदलाव आया। आधुनिक राजनीतिक अर्थशास्त्र में विचारधारा की भूमिका में आर्थिक इतिहासकार ज्यादा रुचि लेने लगे। (ओमस्टीड और गोल्डबर्ग, 1975, पेज 197-199, वेट्टर, 1979, पेज 306-309, नॉर्थ, 1979, पेज 250-251, 259, 1981, पेज 45-48, डेविस, 1980, पेज 9, 12, वीवर, 1983, पेज 295, 296, 322)। जहां तक कारगर परिकल्पना की बात है, उनका अकाल है।

मैं प्रस्ताव करता हूं कि हम सरकार के अधिकार क्षेत्र के विस्तार को परिस्थितियों पर निर्भर मान लें। यानि इस लिहाज से ऐतिहासिक कि जो लोग इसे लाए थे वो उस पल विशेष में मौजूदा परिस्थितियों से प्रभावित थे, उसके खतरों को लेकर सजग। उन्होंने जो किया वह उनके पूर्व अनुभवों पर आधारित था। इस वजह से संकट के कारण सरकार के अधिकार क्षेत्र में इजाफा किया गया तो एक वास्तविक "सामान्य स्थिति पर वापसी" लगभग नामुमकिन ही थी। यह अपरिवर्तनीय स्थिति न केवल आपदाग्रस्त संस्थाओं (उदाहरण के लिए प्रशासकीय संस्थाएं और पहले के कानूनी पेंच) के कारण जिनमें से कुछ अर्थशास्त्रियों द्वारा सरकार के आकार को लेकर उठाए जाने वाले कदमों में दिखाई भी देती है। खास बात यह है कि व्यवहार का यह जो अंतर्निहित ढांचा है यह पूर्ववत यथास्थिति पर नहीं लौट सकता। कारण जाहिर सा है, संकट की स्थिति ने संभावनाओं, कामकाज के तरीके, खतरों और जरूरतों को लेकर समझ और सोच को ही बदल डाला। यानी हर संकट ने तत्कालीन वैचारिक माहौल को ही बदल डाला। सतही तौर पर भले ही संकट के बाद की अर्थव्यवस्था व समाज और संकट

के पहले की अर्थव्यवस्था-समाज में साम्य दिखता हो लेकिन यह वास्तविकता के लिहाज से छलावे भरा है।

संकटों का सामना कर चुके और सरकार के बढ़े हुए अधिकारो का अनुभव ले चुके लोगो के दिलो-दिमाग यानी उनके भविष्य के व्यवहार और प्रतिक्रिया के मूल केंद्र में आधारभूत ढांचा वाकई बदल गया हैं। पूर्व में आजमाए गए रास्ते पर ही निर्भरता की विचारधारा को लेकर आर्थिक इतिहासकारों ने अन्य संदर्भो में भी चर्चा कर रखी है। उदाहरण के लिए पॉल डेविड ने इसे प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के लिए इस्तेमाल किया है। भविष्य के कदमों में निर्धारण में मशीनी दृष्टिकोण के जरिये भूतकाल के महज क्षणिक दृष्टिकोण के तौर पर इस्तेमाल की डेविड (1975, पेज 11, 15) आलोचना करते हैं। वह उस पुरानी अपरिवर्तनियता का जिक्र करते हैं, जिसमें पुराने आर्थिक ढांचा गुम हो जाता है। जोसेफ शूम्पटर (1950, पेज 72) ने काफी पहले इसे आर्थिक अपराध की संज्ञा देते हुए कहा था कि जब इतिहास के घटनाक्रम की बात होती है तो ऐतिहासिक घटनाक्रम ही आर्थिक ढांचे में अपरिवर्तनीय स्थिति का संकेत होते हैं, जो किसी भी अर्थतंत्र के सिद्धांतों को प्रभावित कर सकते हैं।[3] आर्थिक इतिहासकार सरकार के विकास के अध्ययन के लिए इस वास्तविक गतिशील दृष्टिकोण को अपना सकते हैं, ताजा आलेख में मेरा काम इस बात का संकेत देना है कि ऐसा किस तरह से किया जा सकता है। इसमें मैं अर्थशास्त्रियों को ज्ञान कुछ योजनागत विश्लेषण और तय प्रारूप वाली कुछ सदृश्यता (analogies) के इस्तेमाल के बारे में बताऊंगा।

समस्या का योजनागत दृष्टिकोण

मैंने अपनी पुस्तक (1987, चैप्टर 2) में बताया है कि सरकार के आकार के संदर्भ में आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले सूचकांक 20वीं सदी में रैचिट फेनामेनन (निश्चित दर से एक घटना का एक ही दिशा में विकास का घटनाक्रम या अनावर्ती घटनाक्रम) की ओर इशारा करते हैं। हर बड़े संकट के साथ सरकार का आकार भी एकाएक बढ़ गया। संकट के बाद यह कम तो हुआ, लेकिन फिर भी इसका आकार संकट के पहले के आकार से बड़ा ही रहता है। उस आकार तक भी नहीं जो संकट के नहीं होने पर विकास की सामान्य दर से हो सकता था। इस तरह से संकट ने महज एक अस्थायी बड़ी सरकार नहीं, कई परंपरागत मापदंडों के लिहाज से वास्तविक बड़ी सरकार को जन्म दे दिया था। साथ ही, मेरी किताब में किए गए विश्लेषण के अनुसार सरकार की आर्थिक फैसलों पर वास्तविक पकड़ को उजागर करने वाले और प्रभावी कदम भी रैचिट फेनामेनन को ही उजागर करेंगे। इस तरह मैं इस बात को लेकर आश्वस्त हूं कि 20वीं सदी[4] में अमेरिका में सरकारों के विकास का यही वास्तविक चित्रण है।

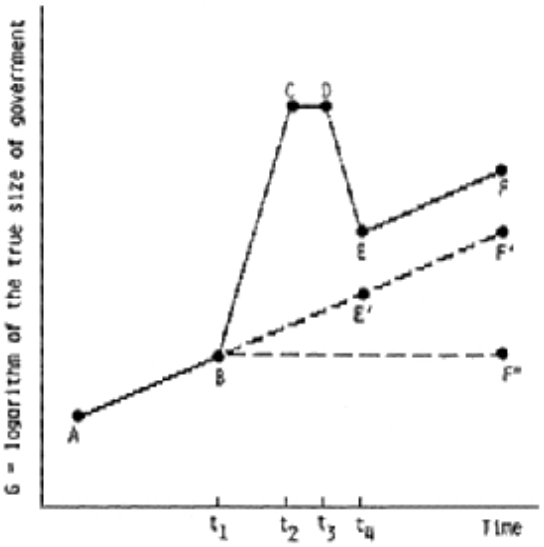

FIG. 1. Schematic representation of the ratchet phenomenon.

पहला चित्र एक अकेले कालखंड में रैचिट फेनामेनन का योजनाबद्ध प्रस्तुतिकरण करना हैं। निश्चित तौर पर 20वीं सदी के अमेरिका का इतिहास ऐसे कई कालखंडों से पटा पड़ा है। वैसे हर एक का अलग से अध्ययन किया जा सकता है। अनुभव आधारित जानकारी में हालांकि बहुत ज्यादा अंतर होता है और हर एक का खुलासा पहले के अध्ययन से प्रभावित होता है। दोनों मामलों में प्रक्रिया एक समान रखी गई है। इसलिए एक प्रारूप का विवरण एक कालखंड तक ही सीमित रखना होगा। हर पूर्ण कालखंड के पांच चरण होते हैं पहला, संकट काल से पहले का सामान्य वक्त (ग्राफ में एबी रेखा), दूसरा विस्तार (रेखाखंड बीसी), तीसरा परिपक्व होना (रेखाखंड सीडी), चार छंटनी (रेखाखंड डीई) और पांचवां संकट के बाद का सामान्य वक्त (रेखाखंड ईएफ) चित्र में खड़ी अक्षरेखा सरकार के आकार के आदर्श संकेतक के लघुगणक (analogies) को मापती हैं। आड़ी अक्षरेखा कालखंडों को नापती हैं। इसलिए कालखंड की ढलान वाली रेखा (जो बिंदुओं एबीसीडीईएफ से गुजरती हैं) सरकार की विकास की दर बताती है। जैसा कि चित्र 1 से जाहिर है कि सरकार के चरण एक और चरण पांच के बीच सरकार से एक ही समान दर से विकास की कल्पना की जाती है। ये चरण संकट के पहले और बाद के सामान्य काल के हैं। यह चौथे चरण में उतनी ही तेजी से सिकुड़ता है जितनी तेजी से यह दूसरे चरण में फैलता है। और परिपक्वता के तीसरे चरण में यह बिलकुल नहीं बदलता। इनमें से कोई भी धारणा निर्णायक नहीं है और सभी अनुभव के तराजू में तौलने पर संदेह के घेरे में आ जाते हैं। लेकिन मेरे तर्क का कोई अंश इन पर निर्भर नहीं हैं। इन्हें तो केवल आसानी से समझाने के लिए इस्तेमाल किया गया हैं। पाठक चाहे तो इसमें अपनी इच्छा के मुताबिक परिवर्तन भी कर सकता है।

रैचिट फेनामेनन के विश्लेषणात्मक खुलासे में मेरा आग्रह बस इतना है कि (1) बिंदु सी, बिंदु बी से

काफी ऊपर है, यानी सरकार के आकार में बढ़ोतरी एकाएक नहीं होती, (2) बिंदु ई, बिंदु डी से काफी नीचे होता है, यानी एक वास्तविक छंटनी हुई है, (3) बिंदु ई, अवास्तविक संबद्ध बिंदु ई से ऊपर है यानी अगर सरकार ने टी1 से टी4 के बीच संकट पूर्व दर से विकास किया होता तो यह ई तक पहुंचती, मतलब छंटनी 'अपूर्ण' है, (4) संकट के बाद के दौर में स्थिति सामान्य होने के चरण में विकास की दर पर्याप्त ज्यादा है। इससे एफ की तरह कोई भी बिंदु अपने अवास्तविक बिंहु जैसे एफ1 से अनिश्चित लंबे समय तक (संभवतया एक और संकट के सामने आने तक) ऊपर ही रहेगा। यह अंतिम धारणा निर्णायक है, क्योंकि इसकी गैरमौजूदगी में एफ, एफ1 की ओर जा सकता है और जब इनका मिलन होगा (संकट से पहले और बाद में) तो बिंदुओं बीसीडीईएफ द्वारा वर्णित रूपरेखा को क्षणिक घटना करार दिया जा सकता है। इस लिहाज से कि सरकार का वास्तविक आकार ऐसा होगा, मानो संकट जैसी कोई स्थिति आई ही नहीं थी।

पूर्व वर्णन के अनुसार रैचिट फेनामेनन वह प्रक्रिया नहीं है जिसमें सरकार का पूरा विकास केवल संकट की ही देन होता है। संकट पूर्व सामान्यकाल में सरकार की विकास दर सकारात्मक मानी जाती है। पहले चरण में, न केवल बड़ी सरकार के विकास का कारण बनती है, बल्कि संकट की गैरमौजूदगी में संभवतया बड़ी सरकार बनने का सिलसिला जारी रहता, जैसा कि चित्र एक की काल्पनिक रेखा बीईएफ1 बताती है। एडवर्ड हरमन (1981, पेज 299, 300) कह भी चुके हैं और जिसे कई अन्य पहचाह चुके हैं, बड़ी सरकार का चलन, "जो कई दशकों से देखा जा रहा था, निश्चित तौर पर कुछ बेहद आधारभूत शक्तियों और कुछ बड़े समूहों के हितों की ओर इशारा करता है।"[5] संकट का घटनाक्रम इस परिकल्पना के किसी रुपांतर का खंडन नहीं करता कि निरपेक्ष ताकतें वड़ी सरकार के गठन का कारण वनती हैं। एकतरफा अनियत कारणात्मक निष्कर्ष हमारा उद्देश्य नहीं।

कोई हालांकि इस कपोल-कल्पना तक पहुंच सकता है कि संकट न केवल सरकार के वास्तविक आकार में स्थायी इजाफा करता है, तुलनात्मक तौर पर उतना ही जितना सांसारिक ताकतें अकेले कर देंगी। इसके बाद यह तर्क भी दिया जा सकता है कि संकट के कारण इन सांसारिक ताकतों का कामकाज प्रभावित होता है, आखिरकार क्षणिक और सांसारिक ताकतों के बीच का अंतर वास्तविक की बजाय विश्लेषणात्मक है। यह कारणात्मक कारकों को उनकी दृढ़ता के आधार पर वर्गीकृत करता है। इस आधार पर नहीं कि वे क्या हैं या वे कैसे काम करते हैं। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि सरकार की विकास की राह की बाधाओं को तोड़ने के संकट के बिना, सांसारिक ताकतें अंततः सरकार के वास्तविक विकास की ताकत गंवा बैठेंगी। कुछ विद्वानों का तर्क है, उदाहरण के लिए, विश्वयुद्धों के दौरान ज्यादा करों ने आम आदमी को दूसरे विश्वयुद्ध के बाद के विकास के बाद थोपे गए ढेर सारे करों के लिए तैयार कर दिया था (बेनेट एंड जॉनसन, 1980, पेज 70-72, डाय,1975, पेज 197-199, पिवेन एंड क्लार्क, 1982, पेज 133)।

ऐसे परिदृश्य में संकट के अभाव में अवास्तविक विकास पथ निश्चित ही चित्र 1 का बीईएफ1 नही

होना चाहिए था, बल्कि इसे तो बीएफ होना चाहिए था। कई विश्लेषकों की राय में संकट, चिरस्थायी सांसारिक विकास को जीवित रखने के लिए जरूरी हैं। कोई संकट को पहले (बहुत मजबूत) या दूसरे (बहुत कमजोर लेकिन महत्वपूर्ण) किसी भी ताकत के लिहाज से देखें। रैचिट फेनॉमेनन के हर रूप को दो सवालों का जवाब तो देना ही होगा। पहला, दूसरे चरण में सरकार एकाएक क्यों बड़ी हो जाती है, खासतौर पर तब जब संकट युद्ध के लिए संसाधन जुटाने का रूप ले लेता हैं। बहुत कम विश्लेषकों ने ही इस सवाल पर गंभीरता से विचार किया है। अधिकांश तो यह मानकर ही चलते हैं कि ऐसी परिस्थिति में सरकार का बड़ा होना स्वाभाविक है। वे केवल यह ही नहीं मानते कि सरकार को अपना मूल परंपरागत कदम, जैसे देश की सुरक्षा व्यवस्था, करते रहना चाहिए, लेकिन साथ ही सरकार को और ज्यादा बेहतर ढंग से अपने अधिकार क्षेत्र में भी पर्याप्त बढ़ोतरी करना चाहिए। जैसे कुछ हद तक बाजार पर निर्भर अर्थतंत्र को अपने आदेश से नियंत्रित अर्थतंत्र में बदलकर। इस सवाल के बारीकी से अध्ययन से न केवल रैचिट फेनॉमेनन का कुछ और खुलासा होता है बल्कि यह आधुनिक प्रतिनिधि लोकतंत्र में सरकार की प्रकृति को उजागर करता है। दूसरा, आखिर चौथे चरण की छंटनी अधूरी क्यों है। इस सवाल पर विचार भी आधुनिक राजनीतिक अर्थशास्त्र के ऊपर प्रकाश डाल सकता है। खासतौर पर सरकार के वास्तविक विकास के दौरान विचारधारा में परिवर्तन की भूमिका का भी खुलासा इससे हो सकता हैं।

दूसरा चरण क्यों? लागत छिपाने वाली परिकल्पना

आखिर, रैचिट फेनॉमेनन के विकास का चरण, यानी दूसरा चरण क्यों होता है। इस सवाल का जवाब देना उन कुछ पाठकों को गैरलाजमी लग सकता है, जो यह मानकर चलते हैं कि सरकार का विकास तो एक बड़े सामाजिक संकट की ही देन है, लेकिन यह तर्क का निर्णायक और महत्वपूर्ण भाग है, जो मैंने दिया है। लोग उसी पर ध्यान दें जो में समझा रहा हूं न कि उस पर जिससे मैं सहमत हूं। इस अंतर को समझने के लिए ज्यादा मशक्कत की जरूरत नहीं है। यह अंतर, जिसका मैं बार-बार खुलासा करूंगा, दरअसल आर्थिक फैसलों पर पूरा अधिकार रखने वाली बड़ी सरकार और सीमित परंपरागत सरकारी कामकाज पर ढेर सारे संसाधन झोंकने वाली बड़ी सरकार के बीच का है। यहां जिस रैचिट फेनॉमेनन का जिक्र है वह सरकार के वास्तविक विकास के संदर्भ में हो रहा है। यानी सरकार का विकास बाद वाली सरकार के संदर्भ में हो रहा है। बड़े युद्ध जैसी परिस्थिति में गतिशीलता के लिए सरकार को राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे आधारभूत काम को अंजाम देना पड़ेगा। संसाधनों के ज्यादा इस्तेमाल के स्तर पर भी। सरकार संभवतया पहले से करारोपण और खर्च के जरिये शांतिकाल में सैन्य खर्च का ढांचा खडा कर रही थी। खैर किसी भी सूरत में उसके पास ऐसा करने का अधिकार तो था ही। युद्ध में होता बस इतना है कि सरकार के परंपरागत कामकाज और आर्थिक गतिविधियों का दायरा बढ़ जाता है। यह अधिक संसाधन झोंकने वाली बड़ी सरकार का कारण बढ़ता है, आर्थिक फैसलों पर बहुत ज्यादा नियंत्रण वाली बड़ी सरकार को नहीं।[6]

लेकिन, अगर सरकार युद्ध की तैयारी में अपने परंपरागत कामकाज के अलावा आर्थिक फैसलों पर भी अधिकारों को पुख्ता करती है - जैसे लोगों को नौकरी पर रखने की बजाय उनकी तात्कालिक सेवा या कच्चे माल को बाजार से खरीदने की बजाय उसे कानूनी तौर पर हासिल करने की कोशिश तो फिर यह आर्थिक फैसलों पर बहुत ज्यादा नियंत्रण वाली बड़ी सरकार की ओर कदम होता है। तकनीकी तौर पर सरकार को संकट काल में अपना आकार बढ़ाने की कोई अनिवार्यता नहीं होती, बड़ी लड़ाई की तैयारी के लिए भी। आर्थिक अनिवार्यता जैसी कोई बात हो ये जरूरी नहीं। 20वीं सदी में आर्थिक फैसलों पर ज्यादा नियंत्रण वाली सरकारें देखने को मिलीं। अपने तर्क के और अधिक खुलासे के लिए मुझे अमेरिकी राजनीति तंत्र की प्रकृति को लेकर कुछ मत बनाना पड़ेगा। वह तंत्र जो लोकप्रिय मिथक और राजनीति शास्त्र के अनेक सिद्धांतों के विरूद्ध जाता है। जनता की पसंद के भी खिलाफः मैं यह मानता हूं कि सरकार के पास नीति-निर्धारण के लिए पर्याप्त स्वायत्तता होती है। एक पर्याय और है जिसे आमतौर पर ज्यादा समर्थन हासिल है। इसके मुताबिक सरकार विभिन्न गैर सरकारी हितों का प्रतिनिधित्व करती है और इसमें उसकी गतिविधियां भी प्रभावित होती हैं। अपनाए गए राजनीतिक मॉडल के आधार पर हम यह सोचते हैं कि सरकार जो कर रही है वह अधिसंख्य मतदाताओं या मध्यम मतदाताओं या दबाव बनाने वाले सुसंगठित समूहों या किसी बड़े कारोबार या किसी अन्य की आकांक्षाओं से प्रभावित है। लेकिन मॉडल इनमें से कोई सा भी हो, इस संभावना को खारिज कर दिया जाता है। जरूरी नहीं कि ये हित किसी गैर सरकारी हित का प्रतिनिधित्व करते हों या उसके अनुरूप हों।

सरकार के पास पर्याप्त स्वायत्तता मानने का यह मतलब नहीं कि अधिकारी जो चाहें कर सकते हैं। उनको कई नियंत्रणों का सामना करना पड़ता है। जिसमें में कई का खुलासा परंपरागत राजनीति शास्त्र में किया गया है। मेरी मान्यता में भी अनिवार्यता कोई षड़यंत्रकारी या द्वेषपूर्ण भाव नहीं हैं। सरकारी अधिकारी उदार के साथ ही किसी अधम उद्देश्य से भी काम कर सकता है उनसे निजी हितों के बारे में नहीं सोचने की उम्मीद करना निश्चित तौर पर बचकाना ही होगा। लेकिन किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि वे केवल किसी भौतिक या राजनीतिक निजी हित के लिए ही काम करते हैं। कुछ अधिकारी विचारधारा से प्रभावित अपनी सोच के चलते सार्वजनिक हित के लिए भी काम कर सकते हैं (कार्ल एंड जूपान, 1984)। हालांकि ऐसा करने में हो सकता है वे स्वायत्तता के साथ गैर सरकारी तत्वों के विरूद्ध काम कर सकते हैं। कुल मिलाकर कुछ विस्तृत सरकारी स्वायत्तता का मॉडल तैयार करने वाले एरिक नोर्डलिंगर (1981, पेज 8) के शब्दों में मैं यह मानकर चल रहा हूं कि सरकारी अधिकारियों का आजाद प्रभाव और वर्णनीय महत्व, उतना तो होता ही है जो किसी लोकतंत्र में सार्वजनिक नीति बनाने वाले निजी समूहों का होता है। लोकतांत्रिक सरकार, नियमित तौर पर अपनी प्राथमिकताओं के मद्देनजर आधिकारिक तौर पर काम करने के लिए कुछ हद तक स्वायत्त होती है। सामाजिक

विविधता की मौजूदगी में भी यह पर्याप्त स्वायत्त होती है।[7]

सरकार की स्वायत्तता सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होती है। संकट के कालखंडों में तो यह सबसे ज्यादा होती है। नोर्डलिंगर (1981, पेज 76) कहते हैं, कुछ संकटकालों में सरकारी प्राथमिकताएं पीछे पड़ जाती हैं। युद्ध या गंभीरता व प्रकृति में युद्ध जैसी, उदाहरण के लिए महामंदी राष्ट्रीय आपातकाल के लिए जरूरी स्वीकृत परिस्थितियों में 20वीं सदी के अमेरिकियों की यह उम्मीद और इच्छा होती है कि सरकार कुछ करे और जल्द करे (ब्राउन 1983, पेज 21, 28 एडलमैन 1964, पेज 78-83, डाय और जॉग्लर 1981, पेज 283-284, 313 शुल्टज व डैम 1977, पेज 2, 155, 205 लॉशेनबर्ग 1964)। सरकार के बाहर मौजूद बहुत कम लोगों को इतनी जानकारी नहीं होती कि वे मौजूदा आपातकालीन स्थिति या उससे निपटने के लिए जरूरी एक विस्तृत और अच्छी योजना बना सकें। इसलिए नागरिक एक साथ इस बात की मांग करते हैं (ए) ज्यादा सरकारी कार्यवाही और (ब) कम अध्ययन, जनमत, विकल्पों पर बहस। वे राजनीतिक और सरकारी कामकाज में तारतम्य चाहते हैं। बहुचर्चित 100 दिनों (फेमस हंड्रेड डेज) के दौरान बनाए गए नये उपायों (न्यू डील मेजर्स) से एक साल पहले 1932 में फैलिक्स फ्रैंकफर्ट ने शिकायत की, "एक के बाद एक उपाय बहुत जल्दी-जल्दी किए गए हैं, उन्हें आपातकालीन प्रयासों का नाम दिया गया है, और विस्तार से चर्चा, ऐहतियात बरतने की अपीलों, विकल्पों के सवालों को बाधाकारी या उपदेशात्मक या दोनों बताकर खारिज कर दिया गया।" (गर्वर में प्रकाशित, 1983, पेज 267-268)। निर्णय प्रक्रिया में गैर सरकारी लोगों को शामिल करने में कुछ समय लगता है और संकट काल में समय ही सबसे महत्वपूर्ण होता है। इसलिए अधिकारियों को अपनी (और संभवतया पथभ्रष्ट) प्राथमिकताओं पर काम करने को मौका मिल जाता है।

सरकारी अधिकारियों के लिए सर्वसम्मति से कोई फैसला लेना अलग बात है और उस फैसले को लागू करना दूसरी बात। खासतौर पर जब किसी बात का पालन कराना हो या फिर उसे कोई त्याग करना हो, तो पहले से जान चुकी जनता, शायद आपत्ति कर दे। राजनीति की आज जो स्थिति है, उसको लेकर तो कहा ही जा सकता है कि नीतियां खर्चीली होती हैं। अधिकांश मामलों में यह खर्च आम आदमी के ही माथे आता है और यह किसी बड़े बोझ सा होता है। कई योजनाकारों ने देखा है कि युद्ध कभी भी दो प्रमुखों के बीच तक ही सीमित होकर नहीं रह जाता। उन्होंने यह भी देखा है कि सैनिकों की कम पगार, उनके अनैच्छिक काम से जुड़े गंभीर खतरे और ऐसे कानूनी पेंच जिनसे उनकी वो आजादी प्रभावित होती है, जिसे आम नागरिक जन्मसिद्ध अधिकार सा मानकर चलता है। निश्चित तौर पर संकट काल में हर एक को भर्ती की अनिवार्यता का सामना नहीं करना पड़ता है। फिर भी सरकार द्वारा सभी या अधिकांश नागरिकों पर राष्ट्रीय आपातकालीन नीतियों के तहत पर्याप्त आर्थिक या अन्य लागतों का बोझ पड़ सकता है।

नीतियों को लागू करने के लिए जरूरी खर्चों को झेलने की नागरिकों की इच्छा, खर्च बढ़ते जाने के साथ घटती जाती है। यह विलोम संबंध कुछ और नहीं अर्थशास्त्रियों के मांग के सिद्धांत (law of demand) का उपप्रमेय (corollary) है। यहां तक कि हताहतों की संख्या करों का बोझ बढ़ने और सेना द्वारा आम नागरिक के लिए जरूरी वस्तुओं, सेवाओं के लिए जरूरी संसाधनों का बड़ा हिस्सा हड़प लेने पर शुरूआती दौर में बेहद लोकप्रिय युद्ध भी जनसमर्थन गंवा देते हैं। सरकार भी जानती है कि जनता की एक सीमा होती है। उनको इस सीमा के परे ले जाने से न केवल नीतियों की सफलता को ग्रहण लग जाएगा बल्कि खुद सरकार का अस्तित्व संकट में आ सकता है।

लेकिन यह भी जाहिर है कि जनता की खर्च पर यह प्रतिक्रिया केवल तभी तक रहेगी, जब उनको इस बात की जानकारी रहेगी। वास्तविक और जनता द्वारा माने जा रहे खर्च के बीच अंतर प्रदर्शित करने की लालसा ही सरकार को राष्ट्रीय आपातकालीन परिस्थितियों में ज्यादा लागत वाली नीतियां बनाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। हताहतों की बात को छोड़ दें तो किसी खर्च को आसानी से आर्थिक खर्च की श्रेणी में नहीं रखा जाता। और न केवल हर एक उसको गिन सकता है (उदाहरण के लिए अपने सालाना कर से), ऐसे खर्च को पूरे समाज के लिए जोड़ दिया जाता है (जैसे सरकार का सालाना कर राजस्व)। इसलिए सरकार के लिए यह जरूरी हो जाता है कि आर्थिक खर्च को गैर आर्थिक मद में बदलने के लिए ऐसी नीतियां तैयार करे जिसमें खर्च धीरे-धीरे बढ़े। खर्च को इस तरह से स्थानापन्न करने से नागरिकों को इस बात का अहसास नहीं हो पाता कि वे कितना बड़ा योगदान दे रहे हैं। ऐसे में उनका विरोध मंदा पड़ता जाता है।
उदाहरण के लिए, मरे वेडनेबॉम ने देखा कि न्यू डील और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान, संघीय सरकार ने सहायक और आर्थिक लक्ष्यों को बढ़ावा देने के लिए अपनी संग्रहण की नीतियों (प्रॉक्यूरमेंट पॉलिसिज) का इस्तेमाल शुरू किया। ये नीतियां आपातकालीन स्थितियों की समाप्ति के दशकों बाद आज भी कायम हैं। वह लिखते (1981, पेज 176, 177, ज्यादा जोर देकर) है कि ऐसी कोशिशों में लाभ (किसका?) यह है कि राजकोष से अतिरिक्त, सीधी मंजूरी की जरूरत नहीं पड़ती और इसलिए प्रतिबंधक संग्रहण उपाय हमेशा मुफ्त से दिखाई देते हैं। और घाटा (किसे?) यह कि अप्रत्यक्ष होने के कारण, कम ध्यान आकर्षित करते हैं।
सार्वजनिक अर्थव्यवस्था पर उपलब्ध साहित्य एक घटना 'आर्थिक मायाजाल' का जिक्र करता है (एल्ट 1983 पेज 183, 208, 210 एल्ट और क्रिस्टल 1983, पेज 194)। जैसा कि नॉर्डलिंगर (1981, पेज 57) कहते हैं, यह मत यह तय मानकर चलता है कि सरकारी अधिकारी नियत अवधि में पूरे निर्वाचन समूह (इलेक्टोरेट) से ज्यादा बड़ी राशि खर्च करते हैं। यह भी कि ये अधिकारी हमेशा करों के जरिये कुल राजस्व का अनुपात बढ़ाकर निर्वाचन समूह (इलेक्टोरेट) पर थोपे गए खर्च के कुछ हिस्से को छिपा लेते हैं। इस तरह से उनकी प्राथमिकताएं सार्वजनिक नीति में जगह बना लेती हैं।

इस तरह से प्रबुद्ध नागरिकों के लोकतंत्र में भी सरकार प्रत्यक्ष दिखने वाले संसाधनों से ज्यादा संसाधन इस्तेमाल कर लेती है। फिर भी आर्थिक मायाजाल (जिसमें आयकर, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण से की गई गुपचुप वसूली शामिल हैं) और बड़ी सरकार बना सकता है, जरूरी नहीं कि यह ज्यादा आर्थिक अधिकारों वाली बड़ी सरकार का कारण बने।

खर्च को छिपाने का एक और तरीका जिसमें सरकार द्वारा नियंत्रित अर्थव्यवस्था (command economy) को बाजार आधारित अर्थव्यवस्था (market economy) से बदल दिया जाता है, और बड़ी सरकारों का कारण बनता है। (फ्रे 1978, पेज 30, 109, 117, 120)। अर्थशास्त्रियों ने इस किस्म के छिपाव का सैन्य प्रस्तावों (ओई 1967, एंडरसन 1982) के संदर्भ में काफी हद तक विश्लेषण किया है। इसी विश्लेषण को उन तमाम सरकारी प्रबंधनों पर लागू किया जा सकता है, जिनके जरिये बिना खुले बाजार में बोली लगाए सरकार संसाधन जुटा लेती है।

इन खर्चों के छिपाव में कई अनदेखे रह जाते हैं, क्योंकि सरकार इनमें से कुछ का नागरिकों का भुगतान भी करती है। जाहिर तौर पर उनसे हासिल संसाधनों के लिए यथास्थिति को कायम रखने की खातिर। लेकिन जब कभी सरकार ने मूल्य नियंत्रण या दूसरी तरह से बाजार को प्रभावित करने की कोशिश की-उदाहरण के लिए, पसंदीदा उद्योगों को कम मात्रा में उपलब्ध कच्चे माल की आपूर्ति के लिए आधिकारिक प्राथमिकता का उपयोग-इस व्यवहार में किया गया भुगतान, पूरे सामान और दी गई सेवा का वास्तविक मूल्य उजागर नहीं करता। बाजार की पूरी कीमत अदा किए बिना ही सरकार खरीदी गई वस्तु का एक अंश हासिल कर लेती है। इसका परिणाम यह होता है कि अर्थव्यवस्था में मौजूद निजी संसाधन इस्तेमालकर्ता और सप्लायर सरकार के इस कदम के कारण इसके अज्ञात आकार का भार वहन करते हैं। (यह खर्च, अर्थव्यवस्था में संसाधनों के अनियमित वितरण और तुलनात्मक कीमतों से उपजे बहुत भारी सामाजिक खर्च के इतर है केवल अर्थशास्त्रियों को ही पता होता है कि यह खर्च एक वास्तविकता है।)[8]

लेकिन उस तर्क का क्या कि सरकार के पास अर्थव्यवस्था में ऐसे बदलाव के अलावा कोई चारा नहीं है। यानी कुछ हद तक सरकार नियंत्रित अर्थव्यवस्था (खर्च छिपाने वाली) को बाजार नियंत्रित अर्थव्यवस्था (खर्च बताने वाली) से बदलने के सिवाय यह आरोप हमेशा लगाया जाता है कि बाजार नियंत्रित अर्थव्यवस्था संकटकाल में ऐच्छिक लक्ष्य को हासिल नहीं कर सकती। खासतौर पर जब बात युद्धकाल में संसाधनों को जुटाने की हो। कहा जाता है कि बाजार की गति बहुत धीमी होती है। ऐसे में जबकि राष्ट्र का अस्तित्व ही दांव पर लगा हो, यह अपेक्षित है कि संसाधनों को जुटाने का काम हरसंभव तेजी से किया जाए। कहा जाता है कि बाजार, युद्ध के दौरान अनिश्चित अवधि के रोजगारों के लिए आर्थिक संसाधनों के पुनर्निधारण और तौर-तरीकों में बदलाव का जोखिम मोल नही लेना

चाहता। कहा जाता है कि कुछ सैन्य-औद्योगिक उपक्रमों के लिए जरूरी भारी-भरकम रकम बाजार नहीं जुटा पाएगा। यह सभी कारण देकर कहा जाता है कि सरकार के पास संकटकाल में बाजार आधारित अर्थव्यवस्था को बदलने के अलावा कोई विकल्प नहीं होता। जो लक्ष्य हासिल करने हैं वो मौजूदा मुक्त बाजार व्यवस्था में आर्थिक करारोपण और खर्च के सही तालमेल से ही संभव है। युद्धकाल में राष्ट्रीय संसाधनों को गतिशील बनाने के लिए ऐसा कहा और माना जाता है ... बाजार और उसके नियमित पूरक नाउम्मीदी से भरे और अपर्याप्त हैं। जरूरत है एक ऐसे प्रशासनिक नेटवर्क की जिसमें एकीकरण, योजना और निर्देश की क्षमताएं हों.... (हॉले 1981, पेज 98)

यह कथन भले ही सही हो, लेकिन यह अपने ही समर्थकों द्वारा कही जा रही बातों से अलग है। पहली बात यह कि सरकार आदेश और नियंत्रण के तंत्र से जो काम करती है वह वास्तविकता में हो रहे हैं। यानी श्रम, प्रबंधन, पूंजी और कच्चा माल वही उत्पाद और सेवा दे रहे हैं जो सरकार की खरीद सूची में है। यह सब हो रहा है यह तथ्य ही इस बात का प्रमाण है कि यह संभव है। महज तकनीकी समस्याएं कोई बाधा नहीं हो सकतीं। ऐसे में उचित सवाल यही है कि क्या यह संभव है कि नागरिकों के मालिकाना हक वाले संसाधनों को, कीमतों के तंत्र से टकराव या उसमें बदलाव के बगैर, सरकार की इच्छा के अनुरूप इस्तेमाल किया जा सकता है?

उत्तर है, हां। एक बात तो तय है सरकार की नीतियों का पूरा खर्चा उठाया जा रहा है। घाटे या मुद्रास्फीति की वित्तीय मदद या आर्थिक लुकाछिपी की कोई चाल इस हकीकत को नहीं बदल सकती है कि जब वास्तविक संसाधनों का मक्खन की बजाय बंदूक के उत्पादन के लिए किया जाता है या सरकार की इच्छा के अनुरूप काम वास्तविक, तात्कालिक और अपरिवर्तनीय मूल्य पर होते हैं, तो समाज ढेर सारे अक्सर गंवा देता है। हालांकि यह कल्पनायोग्य है कि अगर सरकार हर सैनिक, निवेश और कच्चे माल के मालिक को संतोषजनक आर्थिक मुआवजा देने लगे तो जरूरी धन राष्ट्रीय आय से ज्यादा हो जाएगा। खासतौर पर वह राशि जो समूची आबादी की जीविका के लिए जरूरी है। ऐसे हालात में कोई संभाव्य आर्थिक वसूली भी सरकार को खुले बाजार से कोई चीज खरीदने के लिए पर्याप्त धन मुहैया नहीं करा सकेगी। वह बाजार जहां संसाधनों के पुनर्स्थापन, हर किस्म के जोखिम, सामान और सेवा की कीमत चुकानी पड़ती है। (आल्शियन और एलन, 1972, पेज 265-268, हिक्स 1946, पेज 125, 126, 143)। सो शायद सरकार अपनी आपातकालीन सूची में मौजूद इस सामान और सेवाओं को कर राजस्व से खरीद सकती है। ऐसे में आपातकाल या संकटकाल में सरकार नियंत्रित अर्थव्यवस्था (कमांड इकानॉमी) की दलील ढेर हो जाती है या शायद नहीं।

लेकिन यह कहने का क्या मतलब है कि सरकार कर नहीं लगा सकती और फिर अपनी नीति को लागू करने के लिए वह हर एक चीज खरीद ले ? इसका सीधा-सपाट मतलब है कि सरकार नागरिक

से ज्यादा महत्व गतिविधि को देती है। यानी वह उनसे, उनके द्वारा स्वेच्छा से दी जाने वाली वस्तु की तुलना में ज्यादा, बाजार के जरिये जबर्दस्ती हासिल कर रही है। ऐसे जोर जबरदस्ती के बाद भी सरकार के बच निकलने के संभावित कारण है : (1) वास्तविक ताकत पर इसके एकाधिकार के कारण नागरिकों में प्रतिकार की ताकत भी नहीं बचती, जो लोकतांत्रिक संस्थानों वाले समाज में अविश्वसनीय लगता है, (2) खर्च का वितरण इस तरह से किया जाता है कि राजनीतिक तौर पर इसका दंश छोटी राजनीतिक पार्टियां झेलती है, जो कि एक लोकतंत्र में व्यावहारिक लगता है, वैसे इसे बाध्यकारी बनाने में अच्छा-खासा खर्च हो सकता है, (3) खर्च इतनी सफाई से छिपाया जाता है कि राजनीतिक रूझान वाले नागरिक भी इसके व्यापक असर को नहीं समझ पाते, उस वक्त भी जब अधिकांश भार उन्हीं को वहन करना है।

मैं इन तीन संभावनाओं को बढ़ते क्रम में विश्वसनीय मानता हूं। यानी संकट काल में सरकारी कामकाज के वास्तविक खर्च को छिपाना ही इस बात को सबसे आकर्षक परिकल्पना बनाता है कि एक लोकतांत्रिक समाज में राष्ट्रीय आपदा के वक्त सरकार नियंत्रित अर्थव्यवस्था (कमांड इकानामी) क्यों बाजार नियंत्रित अर्थव्यवस्था (मार्केट इकानॉमी) की जगह ले लेती है।

इस परिकल्पना से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोकतांत्रिक सरकारें संकट काल में अर्थव्यवस्था पर अपनी पकड़ और अधिक मजबूत कर लेती है, क्योंकि 20वीं सदी का नागरिक उनसे कुछ करने की उम्मीद करता है और इसका विकल्प यानी आर्थिक और बाजार की कार्यप्रणाली पर पूरी निर्भरता, सरकार की नीतियों पर खर्च की वास्तविकता का इतना सजीव चित्रण कर देती है कि नीति और सरकार दोनों की ही व्यावहारिकता खतरे में पड़ जाती है। कई बार तो स्वायत्त सरकार तक खतरे में पड़ जाती है। तो क्या रैचिटट फेनॉमेनन का दूसरा चरण देखने को मिला है। इसके लिए मुख्यतया गलत सूचना और समझ और रिक्तता को भरने के लिए नागरिकों द्वारा इस्तेमाल विचारधारा का दोष है। निश्चित तौर पर वक्त गुजरने के साथ ही नागरिक सरकारी खर्चों की वास्तविकता को जान पाते हैं। फिर आखिर क्यों ऐसी सरकारी पहल अपनी कोई छाप छोड़ जाती है ? क्यों, पहले चित्र के संदर्भ में, चौथा चरण, संकट के बाद की छंटनी अधूरी है ?

चौथा चरण क्यों? वैचारिक परिवर्तन पर एक (आंशिक) परिकल्पना

संकट काल गुजर जाने के बाद भी आखिर क्यों सरकार का वास्तविक आकार संकट काल से पहले के आकार का क्यों नहीं होता? इस सवाल पर विचार कर चुके अनेक विद्वानों ने इसका जवाब सरकारी नौकरशाही, उनके निजी मुवक्किलों और संबंधित राजनीतिज्ञों का हवाला देकर दिया है। इस तरह फ्रांसिस रुरके के सीमित शब्दों में,"अफसरशाही ऐसे निर्वाचन क्षेत्र बनाती है जो उसके खात्मे का विरोध करते हों।" ब्रूस पोर्टर (1980, पेज 68) ने एक परिकल्पना देते हुए कहा था कि युद्धकाल के संकट

के बाद, "अफसरशाही अपने विकास को कायम रखती है...क्योंकि अमेरिकी कांग्रेस में अनिवार्य जरूरत के अभाव में नौकरशाही की ताकत में भारी कटौती की राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव है।" जैक हर्शलेफर (1976, पेज 486) की परिकल्पना के अनुसार, "युद्ध और रक्षा संकट जिनके लिए भारी-भरकम बजट की दरकार होती है, अपने पीछे ढेर सारे अधिकारी छोड़ जाते हैं। साथ ही एक ऐसा राजनीतिक गठजोड़ भी जो संकट गुजर जाने के बाद भी बजट में कटौती का विरोध करता है।" फ्रेडरिक हायेक (1972, पेज 290, 291) ने जोर देकर बताया है कि छंटनी के संकट से जूझ रहे अफसर ऐसी रणनीतिक(स्ट्रेटेजिक) जगहों पर होते हैं कि अपने अधीनस्थ कार्यक्रम के खर्च और फायदों के बारे में जानकारी के कारण, अपने काम को बचाए रखने के लिए प्रभावी तर्क पेश करने में भी उस्ताद होते हैं। इस हद तक कि सारे विशेषतज्ञ 'सहमत' हो जाते हैं। यह परिकल्पना अपने हर रुप में बताती है कि अफसरशाही बनती आसानी से है, लेकिन उसे नष्ट करना बेहद मुश्किल काम है। इसलिए कार्यालय, अफसरशाही और उनके द्वारा जारी नियम सभी वक्त गुजरने के साथ रैचिट फेनॉमेनन का प्रदर्शन करते हैं(फ्रीडमैन एंड फ्रीडमैन 1984, पेज 42, 115, वीवर 1978, मितनिक 1980, पेज 206-214)। इस परिकल्पना में वाकई कुछ दम है और विद्वानों ने भी इससे सहमति रखने वाले काफी सबूत इकट्ठा किए हैं (रुरके 1976, मैकेंजी व टूलक 1975, पेज 204-207)। फिर भी यह संकटकाल के बाद की छंटनी के अधूरेपन का पूरी तरह से खुलासा नहीं कर पाता। आर्थिक फैसलों पर ज्यादा अधिकार रखने वाली बड़ी सरकार का विकास महज प्रशासनिक ढांचे या नियमों, कायदों में इजाफों से कहीं ज्यादा है। इसमें, उदाहरण के लिए, निजी और सरकारी अधिकारों को लेकर न्यायिक व्याख्या में स्पष्ट बदलाव शामिल होता है। संविधान के तहत सरकार के अधिकार, जिम्मेदारी (मरफी 1972, सीगन 1980) और अमेरिकी सरकार द्वारा आर्थिक जगत पर रखे गए वैधानिक अंकुशों में भी बदलाव शामिल होता है। कार्यालय/मुवक्किलों की छंटनी की परिकल्पना, इस और घटना (फेनॉमेनन) के विभिन्न पहलुओं के सवाल पर प्रकाश डालने में नाकाम साबित होती है।

ऊपर से यह परिकल्पना कई बार सवाल उठाए जाने लायक षड़यंत्र के सिद्धांत की ओर झुकती दिखाई देती है। मान लिया जाता है कि कार्यालय और उसके मुवक्किल अपने लिए पर्याप्त मुनाफा कमा लेते हैं। करदाताओं के एक बड़े समूह या अप्रत्यक्ष तौर पर इसे वहन करने वालों, उदाहरण के लिए संभावित लोग जिन्हें किसी कारोबार या काम से रोक दिया गया हो, उपभोक्ता जिन्हें मूल्य-समर्थित वस्तु के ज्यादा दाम देना ही पड़े, पर यह सारा खर्च थोप दिया जाता है। जाहिर तौर पर जो भुगत रहे हैं, उनको यह पता ही नहीं कि खर्च उनके सिर मढ़ दिया गया है। या फिर उनको लगता है कि इस पर खर्च इतना कम है कि कोई राजनीतिक बवाल खड़ा करना उचित नहीं होगा। किसी भी संगठित राजनीतिक आंदोलन या प्रतिक्रिया के अभाव में कार्यालय काम को बरकरार रखता है या कई बार अपना कार्यक्षेत्र और बड़ा कर लेता है।

इसमें कोई शक नहीं है कि ऐसी परिस्थितियों की कोई कमी नहीं है। उनका आर्थिक तर्क निश्चित ही लोहे के घेरे में सुरक्षित है। हां, जब मैं अपनी अगली किताब (विचारधारा पर तीसरा अध्ययन) में विस्तार से तर्क देता हूं, आर्थिक तर्कशास्त्र, जैसा कि परंपरागत धारणा है, राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए अपर्याप्त आधार उपलब्ध कराता है। पूरी संभावना है कि कोई राजनीतिक उद्यमी (हार्डिन, 1982, पेज 35-37) अपने कैरियर को प्रसिद्धि देकर और विशेष रूचि वाले आयोजनों के जरिये (जैसे सीनेटर विलिया प्रॉक्समायर और उनके गोल्डन फ्लीस अवार्ड) गति दे सकता है। सरकार से अगर किसी को ज्यादा लाभ मिलता है तो फिर उसे छिपाना मुश्किल काम है। अगर किसी छोटे समूह को कोई लाभ पहुंचाया जा रहा है और यह बिना किसी चुनौती जारी रहता है, और राजनीति के चंद मंझे हुए खिलाड़ियों को इसका आभास हो भी जाता है, एक सच्चा निष्कर्ष यही होगा कि कोई भी इसे उछाले जाने के लिहाज से खास राजनीतिक मसला नहीं मानता। एक विशेष हित को दिए गए लाभ का खुलासा कई मामलों में राजनीतिज्ञों को मामले को उठाने के लिए कई बार अनमने भाव से या कई बार तो तैयार ही नहीं कर पाता।

ऐसे खुलासों को लेकर आम आदमी उदासीनता का एक कारण, अधिकांश लोगों की इस बात को लेकर सहमति होती है या फिर वे सरकार की नीति का का मुखर विरोध नहीं करते। फिर भले ही उसका उन पर असर (भले ही वह कम हो) सकारात्मक हो या फिर नकारात्मक। विक्टर फुश (1979, पेज 16) ने राष्ट्रीय नीतियों के बारे में लिखा है वह सरकार की अन्य नीतियों के बारे में भी सही हो सकता हैः "निरंतर यह कहना कि यह नीति या यह अनुदान तर्कहीन या फिर अपर्याप्त है, सुना ही नहीं जाता क्योंकि बहुमत इसे इस तरह से देखता ही नहीं।" कर सुधारों की एक परिचर्चा में जॉर्ज शुल्ट्ज और केनेथ डेम (1977, पेज 51,52, विशेष जोर देकर) ने यह बात देखी है कि किसी नीति का समर्थन करने वाले समूह "इन तय सी उम्मीदों से उपजी निराशा की नाराजगी को भुनाने की कोशिश करते हैं।" ऐसे समूह इसीलिए "अपनी कर प्राथमिकताओं के खात्मे में इन प्राथमिकताओं को हासिल करने की तुलना में ज्यादा आसानी से" कामयाब हो जाते हैं। इस बात की लगभग पूरी संभावना है कि नागरिक ऐसी किसी बात का विरोध नहीं करेंगे जो उनकी राय में सरकार का काम ही रहा है। वह सरकार जिसमें प्रशासकीय ढांचा है और उस पर निर्भर लाभार्थी भी। नागरिकों का रवैया यही रहेगाः हम सभी को पहले की तुलना में सरकार से ज्यादा ही मिल रहा है, ऐसे में इन लोगों का हिस्सेदारी की अपेक्षा करना किसी भी लिहाज से गलत नहीं है।[9]

जहां तक वैचारिक दृष्टिकोण की बात है, जिसे परोपकारी उदारता या अशिष्ट न्याय की संज्ञा दी जा सकती है, प्रस्तावित की बजाय सरकार के स्थापित कामकाज को लेकर ज्यादा सहमत दिखता है। इस हद तक कि दुश्वारियां सरकार की नई नीतियों में दिखाई देने लगती हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, यहां अर्थतंत्र में सरकार के कार्यविस्तार के लिए संकट और वर्तमान वैचारिक दशा में परिवर्तन के बीच संभावित संबंध देखने को मिलता है। नॉर्डलिंगर (1981, पेज 38) के अनुसार, पिछली

कठिनाईयां "वर्तमान पीढ़ी के व्यवहार को प्रभावित करती है," सरकारी अधिकारियों सहित। थॉमस डाय और हरमन जेगलर (1981, पेज 98,99, 101, 102) लिखते हैं, महामंदी ने " पुरानी व्यवस्था में पढ़े लिखे और कम शिक्षित दोनों ही वर्गों के विश्वास को ठेस पहुंचाई" और "अमेरिकी सरकार में मौजूद प्रबुद्धजनों की सोच पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला...रुजवेल्ट की खानदानी एहसान (noblesse oblige)-यानी प्रबुद्धजनों पर आम आदमी की भलाई की जिम्मेदारी-जल्द ही नये उदारवादी ढांचे का आधारभूत विचार बनने जा रहा था...(यह कुछ लिहाज से) रुजवेल्ट के ही प्रबुद्धजनों और आम नागरिक दोनों में ही किसी विचार की पैठ बनाने की क्षमता का ही सम्मान था।" डाय (1975, पेज 199) का भी यही कहना है कि युद्ध, "नागरिकों को सरकारी गतिविधियों, हस्तक्षेप के लिए मानसिक तौर पर तैयार कर देता है। इसीलिए युद्ध के बाद सरकार का कामकाज युद्ध के पहले कि तुलना में ऊंचे स्तर पर ही बना रहता है।" मेनकर ओलसन (1982, पेज 71) सहमति जताते हुए कहते हैं कि "दो विश्वयुद्धों के बीच की मंदी, दूसरे विश्वयुद्ध और अन्य घटनाओं ने विचारधारा में भारी परिवर्तन के साथ सरकार के कार्यक्षेत्र को और अधिक बढ़ा दिया।" लॉरेंस ब्राउन (1983, पेज 58) का कहना है, "आर्थिक फैसलों पर ज्यादा नियंत्रण रखने वाली बड़ी सरकार अब जिंदगी की एक हकीकत बन चुकी है। कल्याणकारी सरकारों की स्थापना को लेकर लड़ाईयां लगभग समाप्त हो चुकी है...युद्ध के बाद की पीढ़ी, जो ऐसी सरकारों के साथ बड़ी हुई हैं, इसे सच्चाई मानकर चलती है और इसके बगैर जिंदगी की कल्पना ही नहीं कर सकतीं।" ये सभी कथन हालांकि स्वभाव, आस्था, आदर्शों, सोच, दर्शन, संस्कार, मत, सहनशीलता, जिंदगी की हकीकत और सच मान ली गई बातों के साथ विचारधारा में परिवर्तन की बात करती हैं, लेकिन मेरी राय में यह सभी विचारधारा में परिवर्तन को ही प्रदर्शित करती हैं। ये सभी मानते हैं कि 20वीं सदी के बड़े संकटों ने किसी तरह से अमेरिका की विचारधारा को परिवर्तित कर दिया और इसने बदले में सरकार के स्थायी विकास का रास्ता खोल दिया।

यह जांचे जाने की जरूरत है कि आखिर संकट विचारधारा में किस तरह से परिवर्तन लाकर आर्थिक फैसलों पर सरकारी नियंत्रण की आकांक्षा में इजाफे का कारण बनती है। ऐसा करने का एक तरीका तो विचारधारा में परिवर्तन के सिद्धांत और प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के सिद्धांत के बीच उन तमाम समानांतर बातों को खोज निकालना है जो अब तक अनदेखी थीं।[10]

प्रौद्योगिकी और विचारधारा दोनों का ही संबंध ज्ञान से है। प्रौद्योगिकी जहां आस्था का एक 'सख्त' रूप है तो विचारधारा सख्त भौतिक विज्ञान जैसे सख्त ज्ञान और धर्म व तत्वमीमांसा जैसे 'नरम' रुपों के बीच झूलती है। लेकिन दोनों का ही एक बात से समान वास्ता होता है कि यह समझने की कोशिश की जाती है कि दुनिया किस तरह से काम करती है। दोनों ही आस्थाओं का वास्तविक प्रभाव काफी होता है। प्रौद्योगिकी जहां उत्पादन की तकनीकों में योगदान देती है तो दूसरे का योगदान सामाजिक राजनीतिक संगठनों में होता है। दोनों को ही सीधे देख पाना मुश्किल होता है, इसीलिए उनके प्रभावों

के अध्ययन के दौरान दोनों ही अवशिष्ट (residual) की तरह दिखाई दे सकते हैं। इसलिए उत्पादन में देखे जा सकने वाले प्रयासों में जिन सुधारों को नहीं देखा जा सकता, उन्हें प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों (नादिरी, 1970) के खाते में डाल दिया जाता है। राजनीतिक व्यवहार में जो बदलाव राजनीतिक स्वार्थों में हल्के से परिवर्तन से समझ में नहीं आते उनको विचारधारा में परिवर्तन (नॉर्थ 1978, पेज 973, काल्ट और जूपान 1984) के खाते में डाल दिया जाता है। दोनों ही मामलों में गुणवत्ता के लिहाज से कुछ रूपों को देखा जा सकता है, ताकि इस बात को प्रमाणित किया जा सके कि वाकई प्रौद्योगिकी और विचारधारा में परिवर्तन दर्ज किया गया है और इसे महज अपना अज्ञान कहकर अनदेखा न कर दिया जाए। प्रौद्योगिकी में परिवर्तन नये समीकरणों, ब्ल्यूप्रिंटों, रेखाचित्रों और ऐसी ही बातों में देखा जा सकता है। विचारधारा में परिवर्तन को भाषणों, मूल्यों (values) और महत्वपूर्ण नेताओं के चिन्हों के जरिये देखा जा सकता है। इसका खुलासा मैंने कहीं और किया है (1987, अध्याय 3)।

ज्ञान की तमाम विधाओं की तरह प्रौद्योगिकी और विचारधारा को भी सीखना पड़ता है। वह पहले से मौजूद लोगों से बातचीत के जरिये (दंतकथाओं की तरह), तकनीकी सामग्री या धार्मिक साहित्य के जरिये या अनुभव से हासिल किया जा सकता है। दोनों ही वास्तविक मतों के प्रचार-प्रसार के मामले में आपको महान हस्तियां मिल जाएंगी। प्रौद्योगिकी में व्हिटनी, एडिसन और फोर्ड तो विचारधारा के मामले में स्मिथ, मार्क्स और केन्स। ये वो लोग हैं जिन्होंने पहले से मौजूद मतों और उसके फलस्वरूप व्यवहार में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए।

व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो प्रौद्योगिकी और वैचारिक दोनों ही तरह के परिवर्तन विकासवादी तरीके से होते दिखते हैं। किसी भी वक्त आपको वैकल्पिक मत और कार्यप्रणालियां देखने को मिल जाएंगीः बिजली आपूर्ति का सीधे (डीसी) और अप्रत्यक्ष (एसी) तरीका, मुक्त बाजार बनाम समूहवादियों की बाजार की कल्पना। कुछ मत/व्यवहार जटिलता के चलते अस्तित्व बचा पाने में कामयाब नहीं होते। आर्थिक और तकनीकी परिस्थितियां अपरोक्ष बिजली आपूर्ति व्यवस्था को सीधे करंट वाली व्यवस्था से बेहतर साबित कर सकते हैं। आबादी और सामाजिक ढांचे के चलते हो सकता है समूहवाद, मुक्त बाजार से बेहतर साबित हो। लेकिन मतों और व्यवहार की जटिलता विकासवाद की प्रक्रिया को जिस दिशा में ले जा रही है, वह पूरी तरह से अनिश्चित नहीं है।

दोनों ही मामलों में यह परिकल्पना की जा सकती है कि मत की प्रणाली की गति राह पर निर्भर है। अगर भारी पूंजी प्रधान तकनीकों का प्रचुरता से इस्तेमाल किया जा रहा है तो, अनुभव बताता है कि यह प्रौद्योगिकी को भी ऐसी दिशा में ही ले जाएगा जो कि पूंजी प्रधान तकनीकों को ही मदद करे। इस प्रवृत्ति के कारण व्यवस्था या तंत्र को एक दिशा मिलती है-हालांकि सीखने की कोई भी प्रक्रिया फिर भी बाहरी या अनियमित झटके (पॉपर, 1964) के खतरे से जूझ सकती है और संभव है कि इसका

परिणाम भी किसी एक ठोस निष्कर्ष पर न पहुंचे (हेनर, 1983)। उदाहरण के लिए सापेक्षिक मूल्य कुछ ऐसे बदल रहे हैं कि श्रम पूंजी के लिहाज से ज्यादा महंगा हो रहा है, ऐसे में उत्पादक पूंजी प्रधान तकनीकों को और ज्यादा श्रम प्रधान तकनीकों से बदल लेंगे। वैसे नई और पूंजी प्रधान तकनीकों का अनुभव हालांकि हमें इस बात को जानने में मदद करते हैं कि किस तरह की प्रौद्योगिकी बेहतर तरीके से काम करती है। ऐसी जानकारी पूंजी प्रधान तकनीकों को और अधिक प्रभावी बनाती हैं और इस तरह से जरूरी बदलाव को भी प्रोत्साहित करती है। (डेविड 1975, पेज 60-68, नादिरी 1970, पेज 1148)।

वैचारिक बदलाव में इसी तरह का आत्मबल हो सकता है। मान लें, उदाहरण के लिए, एक बड़ी सामाजिक विपदा के कारण मुक्त बाजार की जगह आदेश और नियंत्रण वाला तंत्र ले लेता है। इस नई व्यवस्था से कई तरह की शिक्षा मिलेगी। कुछ हद तक नौकरशाह और शासक, इस नई अर्थव्यवस्था को कामयाब बनाने के लिए नये तौर-तरीके खोजेंगे जैसे नया सूचना तंत्र, आबंटन के नये नियम, अंतर कार्यालयीन विवादों के निपटारे के लिए नई प्रक्रिया और समग्र योजना की खामियों को दूर करने के लिए प्रयास आदि। ये सुधार पीड़ित पक्ष के लिए कम आपत्तिजनक होंगे। इस दौरान बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के कामकाज को बेहतर बनाने की कवायद बंद पड़ जाएगी। नागरिक भी यह जान जाएंगे कि सरकारी नियंत्रण को लेकर उनके कई भय और पूर्वाग्रह आधारहीन थे। सरकार इस बात का फैसला कर सकती है कि कौन एल्युमिनियम और रबर का इस्तेमाल करेगा, संकटकाल में किस बात का उत्पादन नहीं किया जा सकेगा और इसी तरह की अन्य बातें, लेकिन वह आराधना की आजादी या समाचार मीडिया के राष्ट्रीयकरण जैसा कोई कदम नहीं उठाएगी। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार चुनावों का आयोजन होगा। उदारवादियों की संभावित खतरों की चेतावनियों को आम आदमी और प्रबुद्धजनों द्वारा खारिज कर दिया जाता है और वो चुनाव हार जाते हैं। इस दौरान कई लोगों को इस बात का अहसास होता है कि आवश्यकता ही मौके की जननी है। आर्थिक फैसलों पर ज्यादा नियंत्रण वाली अर्थव्यवस्था व्यक्तिगत विकास के कई अवसर उपलब्ध कराती है। न केवल नौकरशाही में बल्कि "मुक्त बाजार" वाली अर्थव्यवस्था के कई पसंदीदा सेक्टरों में भी। विशेषाधिकार वाली जगहों पर बैठे लोगों को न केवल निजी फायदा बल्कि पूरी सरकार की नियंत्रण वाली स्थिति का भी अंदाजा लग जाता है। यही वजह है कि कई विविध कारणों के चलते अधिकांश लोग ऐसे राज को पसंद करने लगते हैं या फिर उसका विरोध नहीं करते। वह राज जो एक बड़े सामाजिक संकट में जरूरत से उपजा अस्थायी अनिष्ट माना जा रहा था।

अलग से यह कहने की जरूरत नहीं है कि इस दौरान सरकार अपनी नीतियों को सही ठहराने की कोशिश करेगी और उनके मूल्य में कमी लाकर लाभ में इजाफे की कोशिश करेगी।
राजनीतिज्ञ बैरल से उंडेलते हैं

पुराने झूठ पर नया झूठ, और सभी की परोपकार भरी बुद्धिमत्ता के लिए तारीफ की जाती है।[11]

यह प्रचार अंततः कुछ निशानों पर तो बैठ ही जाता है। फिर वह भले ही बेमेल या देशभक्त क्यों न हो, संभवतया एक बड़ा समूह। इसलिए इस बात की कल्पना तो की ही जा सकती है कि वैचारिक सीख, सामाजिक समस्या के कारण एक असंतत छलांग लगाकर एक ज्यादा आर्थिक अधिकारों वाली बड़ी सरकार का कारण बनेगी, जो समस्या से लड़ेगी। शायद यही बात विलियम ग्राहम समनेर के इस उपयुक्त वाक्यांश में दिखाई देती है (1943, पेज 473), "प्रयोग समाज की जिंदगी में प्रवेश करता है और फिर कभी नहीं निकलता।"

निश्चित ही विचारधारा के प्रतिरोधी आंदोलनों की कल्पना की जा सकती है। उदाहरण के लिए, दिन के उजाले में अपने पतन का दुस्वप्न देखने के बाद दकियानूसी विचारधारा के लोग पुराने जमाने के धर्म का सहारा ले सकते हैं। हो सकता है कि उनको कुछ कामयाबी भी हाथ लग जाए। अनुदारवादी ऐसा कर सकते हैं इस बात के ढेर सारे असाधारण उदाहरण आसानी से मिल सकते हैं। ऊपर वर्णित सिद्धांत में यह मानकर ही चला जा रहा है कि विचारधारा के प्रगामी (progressive) प्रवाह ऐसे प्रतिक्रियावादी विचारों पर अंकुश लगा देंगे। लेकिन हमें इस बात का अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि संतुलन कहां जाकर होगा। ऐतिहासिक अनुसंधान ही बता सकता है कि अमेरिकी अनुभव के मामले में इन प्रतिकारी बलों में से कौनसा निर्णायक साबित हुआ। (भविष्य निश्चित ही कुछ और बात है, लेकिन आर्थिक इतिहासकार के तौर पर हमें इस बारे में ज्यादा चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है।)

आगे का काम, कुछ उदाहरणों के साथ

पिछले पन्नों में विकसित विश्लेषणों की मदद से किसी भी अध्ययन को आगे ले जाने के लिए ऐतिहासिक अनुसंधान का एक संबद्ध कार्यक्रम है। संकट के हर कालखंड में राजनीतिज्ञों ने आखिर किन आधारभूत सामाजिक आर्थिक प्रक्रिया और वैचारिक कारणों की मदद लेकर इससे निपटने के लिए अर्थव्यवस्था पर सरकार की सत्ता स्थापित की। संचरण प्रक्रिया (transmission process) के कम से कम आठ ऐसे तत्व हैं जिनका अध्ययन किया जाना चाहिएः (1) संकटकाल से पहले, उसके दौरान और बाद की सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति, (2) संकटकाल से पहले, उसके दौरान और बाद की विचारधारा, (3) वे प्रमुख लोग या समूह जो इसका समर्थन या प्रतिनिधित्व करते थे, (4) आपातकालीन कानून और कार्यकारी आदेश, (5) आपातकालीन संस्थाएं, उनकी गतिविधियां और उनका नेतृत्व, (6) आपातकालीन उपायों के परिणाम और प्रतिक्रिया, (7) अदालती दावे, फैसले और कानूनी, खासतौर पर संवैधानिक, मतों को लेकर नये बदलाव और (8) समूचे कालखंड से मिली शिक्षा और संस्थागत विरासत। ये आठों मिलकर परिस्थितियों, मुख्य लोगों, प्रयोजन और कार्रवाई के खुलासे के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करते हैं। इस बात का खुलासा कि किस तरह से हर एक संकटकाल

से पहले, दौरान और बाद में शासकीय ताकत ने आर्थिक फैसलों को प्रभावित किया। यह अनुसंधान कार्यक्रम अध्ययन के कई विशिष्ट क्षेत्रों में इस्तेमाल किया जा सकता है। टेबल 1 छह आर्थिक क्षेत्रों बताता है जिनमें मेरी खर्च छिपाने (रैचिटट दूसरा चरण) और वैचारिक परिवर्तन संबंधी परिकल्पनाओं को परखा जा सकता है। ये छह क्षेत्र हैं-परिवहन, श्रम, कृषि, उद्योग, कर्ज और अंतरराष्ट्रीय व्यापार। कुछ और भी जोड़े जा सकते हैं। (मेरी अगली किताब में मैंने टेबल में दर्ज हर एक विषय की जांच-पड़ताल की है, लेकिन इतना कुछ करने के बाद भी मैं अधिकांश मामलों में महज सतह को ही कुछ कुरेद पाया। विद्वानों को करने के लिए यहां काफी-कुछ है।) इन सभी क्षेत्रों में सरकार-खासतौर पर संघीय सरकार-अब केवल असीमित संभावनाओं वाली वर्तमान या प्रासंगिक अधिकारों का ही इस्तेमाल करती है। वे अधिकार जो पहली बार 1916-1954 की राष्ट्रीय आपातकालीन परिस्थितियों के दौर में देखे गए थे।[12] परिवहन, श्रम बाजार, कृषि, कर्ज और अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर वर्तमान के व्यापक संघीय नियंत्रण अधिकांश अर्थशास्त्रियों के लिए सुपरिचित है। औद्योगिक संसाधनों के आबंटन में समकालीन सरकारी प्रभावों (आमकर और नियमन नीतियों के अलावा) का सर्वाधिक प्रभाव सैन्य-औद्योगिक संकुल पर पड़ता है। जहां विस्तृत अनुसंधान, विकास और निर्माण गतिविधियों में बाजार की ताकतों का नहीं सरकारी फैसलों का हाथ दिखाई देता है। (क्लेटन, 1970, मेलमेन 1970, 174, हेनराहन 1983)।

प्रस्तावित मार्ग पर चलने वाले मामले के खुलासे के लिए स्वर्णमान (gold standard) की समाप्ति को याद कीजिए, जो निश्चित तौर पर एक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इसी की वजह से पिछले 50 सालों में मुद्रास्फीति का युग देखने को मिला है। 1980 के आर्थिक संकट के वक्त क्लीवलैंड के प्रशासन ने, जो वैचारिक तौर पर मजबूत मुद्रा (sound currency) का पक्षधर था, स्वर्णमान को ही बनाए रखने की एक भारी राजनीतिक कीमत चुकाई (नेविन, 1932, पेज 649-666, 674-676)। 1917 में दुश्मनों के साथ व्यापार न करने के कानून (trading with the enemy act) से अमेरिकी कांग्रेस ने राष्ट्रपति को विदेशी मुद्रा में या सोने में लेन-देन को प्रतिबंधित करने का अधिकार दे दिया था (ट्वाइट, 1985)। वुडरो विल्सन ने इस अधिकार का फायदा उठाते हुए फेडरल बैंक और राजकोष से लाइसेंस पाने वालों के अलावा किसी के भी सोने के निर्यात पर पाबंदी लगा दी (फ्रेडमैन और श्वार्ट्ज, 1963, पेज 220)। सवालः अमेरिकी कांग्रेस ने आखिर राष्ट्रपति को स्वर्णमान में हस्तक्षेप की इजाजत क्यों दी? परिकल्पनाः इस अधिकार का इस्तेमाल करके सरकार युद्ध के लिए ज्यादा आसानी से पूंजी जुटा सकती थी (यानी आर्थिक दृष्टि से सस्ते में)। विदेशी मुद्रा के विनिमय और सोने के बाजार तक गैरमान्यता प्राप्त लोगों की पहुंच को रोककर सरकार ने एक तरह से संसाधनों का अपने नेतृत्व की इच्छा के मुताबिक पुनर्निर्धारण कर दिया था। बाहर रह गए लोगों, उनके कारोबारी भागीदारों और उन पार्टियों पर जिनसे यह कारोबार किया जाता, अज्ञात लागत मूल्य थोपते हुए।

पहला विश्वयुद्ध	महामंदी	दूसरा विश्वयुद्ध
परिवहन		
शिपिंग बोर्ड, इमरजेंसी फ्लीट कॉर्प, एडमसन एक्ट, रेलमार्ग प्रशासनसमुद्री परिवहन और रेलमार्ग का राष्ट्रीयकरण	आपातकालीन रेलमार्ग परिवहन कानून (एक्सटेंडेड रेग्युलेशन), रेलवे श्रम कानून 1934	वार शिपिंग एडमिनिस्ट्रेशन, ऑफिस ऑफ डिफेंस ट्रांसपोर्टेशन, इमरजेंसीपावर्स ऑफ इंटरस्टेट कामर्स कमीशन (असाइनमेंट ऑफ प्रायरिटीज, एक्सटेंडेड रेग्युलेशन, मूल्य निर्धारण)
श्रम		
अनिवार्य सैन्य भर्ती, युद्ध श्रम बोर्ड, युद्ध श्रम नीति बोर्ड(सिलेक्टिवडेफरल्स, श्रम विवादों में हस्तक्षेप और प्लांट की जब्ती)	राष्ट्रीय औद्योगिक वसूली कानून में श्रम प्रावधान, वेगनर एक्ट (श्रम संगठनों को प्रोत्साहन), उचित श्रम मानक कानून (पारिश्रमिक और काम के घंटों का निर्धारण)	अनिवार्य सैन्य भर्ती, राष्ट्रीय युद्ध श्रम बोर्ड, मानव संसाधन आयोग (सिलेक्टिवडेफरल्स, श्रम का इछानुसार इस्तेमाल, हस्तक्षेप और श्रमिकों के झगड़ेकी स्थिति में प्लांट की जब्ती)
कृषि		
लीवर एक्ट, फुड एडमिनिस्ट्रेशन (मूल्य निर्धारण और प्राथमिकताओं का निर्धारण)	एग्रीकल्चर एडजस्टमेंट एक्ट 1933, सॉइल कंजर्वेशन एंड डोमेस्टिक अलॉटमेंट एक्ट,एग्रीकल्चरल एडजस्टमेंट एक्ट 1938 (मूल्य निर्धारण, कर्ज, मार्केटिंग ऑर्डर्स, एकरेज का प्रतिबंध)	युद्ध खाद्य प्रशासन (फुड राशनिंग), मूल्य नियंत्रण का कार्यालय (मूल्य निर्धारण, अनुदान)
उद्योग		

युद्ध औद्योगिक बोर्ड (माल की आपूर्ति, प्राथमिकताएं तय करना,चुनिंदा वस्तुओं का मूल्य निर्धारण)	पुनर्निर्माण वित्त निगम (कर्ज और निवेश), राष्ट्रीय वसूली बोर्ड का गठन (प्रॉडक्ट सेलर्स के संगठन को प्रोत्साहन)	युद्ध उत्पादन बोर्ड (प्राथमिकताओं का निर्धारण, असैनिक उत्पादन पर रोक),डिफेंस प्लांट कोर्प्स (प्लांट बनाना), मूल्य प्रशासन का बनाना), मूल्य प्रशासन का
कर्ज		
युद्ध वित्त निगम (कर्ज), पूंजीगत मामलों की कमेटी प्रतिभूतियों (securities) से जुड़े मामलों का नियमन, कर्ज का वितरण)	पुनर्निर्माण वित्त निगम (कर्ज), सिक्यूरिटीज एंड एक्सचेंज कमीशन (प्रतिभूतियों से जुड़े मामलों का नियमन),फार्म क्रेडिट एडमिनिस्ट्रेशन (कर्ज), होम ओनर्स लोन कार्पोरेशन (कर्ज),बैंकिंग एक्ट 1935 (पूंजी और बैंकिंग पर सरकार का और अधिक नियंत्रण)	बैंकिंग एक्ट 1935 (पूंजी और बैंकिंग पर सरकार का और अधिक नियंत्रण)रिजर्व सिस्टम (कर्ज का वितरण, ब्याजदरों पर नियंत्रण)
अंतरराष्ट्रीय कारोबार		
ट्रेडिंग विद एनेमी एक्ट, युद्ध व्यापार बोर्ड (व्यापारियों की लाइसेंसिंगऔर नियमन, दुश्मन की संपत्ति का कब्जा और प्रशासन)	6 मार्च 1933 की राष्ट्रपति की उद्घोषणा, गोल्ड रिजर्व एक्ट(सोने और विदेशी मुद्रा के सारे लेन-देन पर नियंत्रण, स्वर्णमान का खात्मा)	आर्थिक युद्ध निगम (बाद में ऑफिस), विदेश आर्थिक प्रशासन (अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर सीधा नियंत्रण और भागलेना), युद्ध उत्पादन बोर्ड (इंपोर्टलाइसेंसिंग)

इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए ट्रेडिंग विद द एनेमी एक्ट की धारा 5 (बी) से सबूत हासिल

कर पूछा जा सकता हैः इस धारा का प्रस्ताव किसने रखा? यह व्यक्ति किसका प्रतिनिधित्व करता है? इसे पेश करने के पीछे कौनसी विचारधारा थी? क्या अमेरिकी कांग्रेस की किसी कमेटी ने इसको लेकर कोई सुनवाई की थी और उस सुनवाई का क्या परिणाम निकला था? इस कानून के पक्ष और विपक्ष में किसने वोटिंग की थी? युद्ध के समय उठाए गए इस कदम के संस्थागत और वैचारिक परिणामों की खोज के दौरान यह देखने को मिलेगा कि इसने राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट को 6 मार्च 1933 को बैंकिंग हॉलिडे प्रोक्लेमेशन का कानूनी आधार दे दिया। यह 1933-34 के बीच अमेरिका को स्वर्णमान (गोल्ड स्टैंडर्ड) से हटाने के लिए उठाए गए श्रृंखलाबद्ध प्रयासों का पहला कदम था (फ्रिडेल, 1973, पेज 213-236; फ्रीडमैन और श्वाट्र्ज 1963, पेज 462-483)। सवालः किस बिंदु पर शक्तिशाली उच्च वर्ग ने स्वर्णमानक को अपनाने की वैचारिक प्रतिबद्धता दिखाई थी? एक ऐसी प्रतिबद्धता जो 1893-1896 के दौरान निर्णायक साबित हुई, इस हद तक कमजोर पड़ गई कि नकारात्मक उपाय, खासतौर पर स्वर्ण ठेके संबंधी धाराओं (contractual gold clauses) को कानूनन निरस्त करने जैसा उपाय, भी राजनीतिक रूप से संभव दिखने लगे। परिकल्पनाः पहले विश्वयुद्ध के दौरान स्वर्ण बाजार के प्रतिबंध देख चुके कई राजनीतिक तौर पर प्रभावी लोगों ने 1933-1943 के प्रतिबंधों को अन्य वक्त की तुलना में ज्यादा सहजता के साथ स्वीकार लिया।

इस परिकल्पना को आजमाने के लिए, अमेरिकी कांग्रेस पर प्रभाव डालने वाले निजी कारकों के और रूजवेल्ट प्रशासन के निजी कागजातों के साथ-साथ अमेरिकी कांग्रेस की कमेटियों की सुनवाईयों, सदन में हुई बहस का रिकार्ड खंगालने की जरूरत है। खासतौर पर एग्रीकल्चरल एडजस्टमेंट एक्ट में किए गए थॉमस संशोधन के। स्वर्ण धारा के मामलों (294 अमेरिका 361-381, 374 पर, फूटनोट 3) में जस्टिस मैकरेनोल्ड के बहुचर्चित विरोध में सीनेटर एलमर थॉमस के वक्तव्य का हवाला देते हुए कहा था कि इस संशोधन से मुद्रास्फीति की राह इतनी आसान हो जाएगी कि "एक वर्ग से दूसरे वर्ग इसी अमेरिका में लगभग 200,000,000,000 डॉलर मूल्य तक....पहले उनसे जिनके पास बैंक डिपॉजिट है....(दूसरा) उनसे जिनके पास बांड और स्थिर निवेश (फिक्स्ड इन्वेस्टमेंट) है।" उचित अभिलेखीय (pertinent archival) और दस्तावेजी सबूत इस बात पर प्रकाश डाल सकते हैं कि सीनेटर के मत से सहमति के चलते ही और सीनेटर स्वर्णमान को समाप्त करने के पक्षधर थे और यह भी पता चलेगा कि क्या किसी ने, 1933-34 में अमेरिका के स्वर्णमान को हटाने के पहले विश्वयुद्ध के अनुभव का जिक्र किया। निश्चित तौर पर इस नीति का मूल्य ज्यादा आसानी से छिपाया जा सकता है, बनिस्बत इसी परिणाम को हासिल करने के लिए समान आर्थिक स्थानांतरण की तुलना में।

एक और उदाहरण देखिए, 1916 का एडमसन कानून। रेलमार्ग का संचालन करने वालों की राष्ट्रव्यापी हड़ताल को रोकने के लिए राष्ट्रपति की गुहार पर अमेरिकी कांग्रेस ने यह अधिनियम पारित किया था। प्रकट रूप से आठ घंटे का नियम, इस कानून से काम के न्यूनतम घंटे 8 हो गए। इस कानून

के कारण रेलमार्ग की दरों में बिना किसी इजाफे के सरकार ने अंतर-राज्य रेलमार्ग कंपनियों पर ज्यादा पारिश्रमिक दरों को थोप दिया। विल्सन बनाम न्यू (243 अमेरिका 332/ 1971) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने एडमसन कानून को 5-4 से मंजूरी दे दी। अलग मत रखने वाले जस्टिस पिटनी की दलील थी कि सरकार ने न केवल अपने संवैधानिक सीमा का उल्लंघन किया है बल्कि ऐसा करने के दौरान अपने काम का खर्च छिपाया है और दूसरे के खाते में डाल दिया है। उन्होंने कहा, "आपातकाल ने कांग्रेस को वाहकों पर बोझ डालने का कोई अधिकार नहीं दिया। अगर नागरिकों के लिए इसकी जरूरत थी तो कांग्रेस शायद रेलकर्मियों की मांग को सार्वजनिक कोष से पूरा कर सकती थी।" (243, अमेरिका, 382, जोर देकर)। क्या राष्ट्रपति या कांग्रेस में किसी ने भी आर्थिक विकल्प खोजने की कोशिश की? इसका समर्थन करने और विरोध करने वाली पार्टियों का वैचारिक तर्क क्या था? किसने इसके समर्थन और किसने विरोध में मत दिया था?

एडमसन कानून की संस्थागत और कानूनी विरासत में, 1918-1920 में रेलमार्ग उद्योग का राष्ट्रीयकरण, 1920 का परिवहन कानून जो विवादों के निपटारे के लिए रेलवे लेबर बोर्ड को शामिल किया जा सकता है। 1934 में विल्सन बनाम न्यू मामले ने भी सुप्रीम कोर्ट के मिनेसोटा मोरेटोरियम के फैसले (290 अमेरिका 398) के लिए बहुमत के लिए महत्वपूर्ण नजीर सी पेश कर दी थी। चीफ जस्टिस ह्युजेस ने अपने फैसले में विल्सन के वाद को ही स्वीकारा था, "आपातकाल जहां अधिकार नहीं बनाती, आपातकाल अधिकारों के इस्तेमाल का अवसर उपलब्ध कराती है।" उन्होंने संविधान की अनुबंध की धारा से मिलने वाली सुरक्षा को भी कम करते हुए-"किसी गणितीय फार्मूले की तरह ठीक वैसा ही पढ़ने की जरूरत नहीं।" बाकी के जजों की नाराजगी को और भी बढ़ा दिया था। चारों असंतुष्ट जजों की राय में यह धीरे-धीरे अनुबंधों के मामले में सरकारी हस्तक्षेप के बढ़ने का कारण बनेगा। असंतुष्टों का कथन सही साबित हुआ है। इस सोच का परीक्षण करने के लिए कानूनी दस्तावेज मौजूद हैं। इनका अध्ययन रोचक होगा, उदाहरण के लिए कितनी बार और किस तरीके से और किस तरह के मामलों में अदालत के मिनेसोटा मोरेटोरियम के फैसले का हवाला दिया गया। (जैसा कि एलस्टन का कहना है, 1984, पेज 446)।
एक और उदाहरण लीजिए, लेबर यूनियनों की संगठनात्मक गतिविधियों और सामूहिक सौदेबाजी को संघीय समर्थन की शुरूआत। ऐसा पहला समर्थन पहले विश्वयुद्ध के दौरान (केनेडी, 1980, पेज 258-269) देखने को मिला। युद्ध श्रम बोर्ड, जिसे राष्ट्रपति विल्सन ने श्रम संबंधी विवादों के हल के लिए कार्यकारी अधिकारों के जरिये बनाया था ताकि युद्ध जैसी आपातकालीन परिस्थितियों में कामकाज प्रभावित न हो, ने एक ऐसा रूख अपनाया जो श्रमिकों को यूनियन बनाने के लिए प्रोत्साहित करने लगा, उनको सामूहिक तौर पर मोलभाव करने, अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार, यूनियनबाजी के कारण नौकरी को खतरे से बचाव, पारिश्रमिक, काम के घंटों, कामकाज की शर्तों और 8 घंटे के कार्यदिन में मददगार साबित हुआ (मार्शल, 1918, पेज 445, 446)।

पंद्रह साल बाद राष्ट्रीय औद्योगिक रिकवरी कानून (एनआईआरए) , धारा 7 (ए), के अनुसार स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता की हर संहिता में कामगारों के लिए भी तमाम ऐसी गारंटी होना चाहिए (48 अमेरिका अबंधित अधिनियम 198, 199)। जब सुप्रीम कोर्ट ने एनआईआरए 1935 को समाप्त किया तो सीनेटर रॉबर्ट वेगनर ने नेशनल लेबर रिलेशंस एक्ट (49 अमेरिका, अबंधित 449) को पारित करा लिया, जिसकी धारा 7 और 8 के जरिये इन अधिकारों को फिर से लागू कर दिया गया। साफ तौर पर यह महज संयोग नहीं है कि संघीय अधिकारों को लेकर सरकार की तीन घोषणाओं के प्रावधान लगभग एक से हैं। इनके बीच संबंधों का अध्ययन न केवल वार लेबर बोर्ड के 1930 में श्रम कानूनों पर प्रभाव पर रोशनी डालेगा बल्कि इसके अंतर्निहित उद्देश्यों को भी खोज निकालेगा। 1918 और 1933 में ऐसा लगता है कि सरकार ने लेबर यूनियनों को ये अधिकार उन्हें खरीद लेने के लिए ही दिए थे। पहले मामले में विल्सन प्रशासन के युद्ध की तैयारियों को प्रभावित होने से बचाने के लिए और फिर दूसरे मामले में यूनियनबाजों को यथास्थिति देकर रूजवेल्ट प्रशासन के उद्योगपतियों को एकाधिकार देने के फैसले पर मौन रहने के लिए।

इसी दिशा में और छानबीन कर नेशनल वार लेबर बोर्ड (द्वितीय विश्वयुद्ध), 1943 का वार लेबर डिस्प्यूट्स एक्ट और युद्ध के बाद का टाफ्ट-हार्टले कानून, जिसने युद्ध के दौरान (पोलनबर्ग, 1972, पेज 154-183, 242) यूनियनों पर लगाए गए कई प्रतिबंधों को संस्थागत रूप दिया था, जांचा जा सकता है। इसी राह पर आगे चलते हुए पूछा जा सकता हैः 20वीं सदी का वह कौनसा मोड़ था जिस पर लेबर यूनियनों ने विधिसम्मत आर्थिक संस्था के तौर पर आम सार्वजनिक सहमति हासिल कर ली थी? क्या जनता के व्यवहार में यह परिवर्तन महामंदी के वक्त की भारी बेरोजगारी जैसे संकट काल के कारण देखने को मिले? पोलनबर्ग का कहना है, "1941 से पहले कारोबारियों का बड़ा धड़ा यह मानने को तैयार ही नहीं था कि औद्योगिक यूनियनों का अस्तित्व कायम रहेगा, 1945 तक कई सामूहिक मोलभाव की अनिवार्यता को, भले ही फिर वह स्वीकार्य न हो, मान चुके थे।" क्या समकालीन चुनावी आंकड़े और कारोबारियों के संगठनों के वक्तव्य इस परिकल्पना से सामंजस्य रखते हैं? क्या सरकारों ने संकट काल में खर्च छिपाने वाली राजनीतिक रणनीति के तहत यूनियनों का इस्तेमाल किया? आखिरकार समाज पर जोरदार यूनियनबाजी के जरिये थोपी गई कुल लागत सरकार द्वारा सीधे यूनियन सदस्यों को दी जाने वाली संभावित रकम से बहुत ज्यादा है (रेनॉल्ड्स, 1984)। लेकिन आर्थिक स्थानांतरण दिखाई दे जाएगा और करदाता और विरोधी इसका आसानी से अनुमान लगा लेंगे।

साफ तौर पर, प्रस्तावित दृष्टिकोण को आजमाने की संभावनाएं असीमित हैं। पूर्वगामी उदाहरणों का उद्देश्य रैचिट फेनॉमेनन के मेरे द्वारा किए गए चित्रण से जुड़ी लागत छिपाने वाली और विचारधारा में परिवर्तन के परीक्षण की राह में आने वाले सवालों और शोध सामग्री की जानकारी देना है। इस

तरह के अनुसंधान आर्थिक इतिहासकारों के लिए कम्प्यूटर के कमरों से बाहर निकलकर अधिक वक्त लाइब्रेरी और पुरालेखों के बीच बिताने की चुनौती देते हैं। फिर भी यह जरूरी है कि वे सिद्धांतों पर अपनी पकड़ को बनाए रखें, हालांकि सुसंगत सिद्धांत, आम अर्थशास्त्री द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले सूक्ष्म अर्थशास्त्र और इसके उपकरणों की तुलना में ज्यादा विस्तृत होना चाहिए। राजनीतिक और कानूनी विश्लेषक-और दकियानूसी इतिहासकार भी-हमें काफी कुछ सीखा सकते हैं। ऐसे अनुसंधान में अपनी विद्वता में इजाफा मददगार ही साबित होगा। ऐसे में विषय के महत्व को देखते हुए खुद को हर लिहाज से तैयार करना जरूरी है। अगर हम इस चुनौती का सफलता के साथ सामना करते हैं (और आर्थिक इतिहासकारों से बेहतर तैयारी वाला और कौन हो सकता है), तो हमारा स्थान आधुनिक सामाजिक विज्ञान में चिरस्थायी हो जाएगा।

नोट्सः

मैंने इस लेख के विषय पर कई सालों में कई लोगों के साथ चर्चा की है। मैं छात्रों, साथियों और वाशिंगटन, ह्यूस्टन, टेक्सास, ए एंड एम, ड्यूक, पेनसिल्वेनिया, पेनसिल्वेनिया स्टेट और जॉर्जिया यूनिवर्सिटी, लाफायेते कॉलेज, गेटिसबर्ग कॉलेज, इकानॉमिक हिस्टरी एसोसिएशन के सरकारी नियमन पर 1982 की वर्कशॉप, खासतौर पर ली एल्सटन, प्राइस फिशबैक, एलीन क्रेडिटरस डॉन मैकक्लोसकी, डग नॉर्थ, जो रीड, एंडी रूटेन और चार्लोट ट्वाइट का शुक्रगुजार हूं। संपादक लैरी नील और एक्सप्लोरेशन इन इकानॉमिक हिस्टरी में एक अज्ञात रेफरी ने मुझे पहले के एक लेख के संदर्भ में काफी अच्छी टिप्स दी। मेरे बेटे मेट हिग्स ने हमारे कम्प्यूटर को मेरे लिए चित्र एक बनाने के लिए मजबूर किया। जिन्हें मैं भूल गया उनसे माफी मांगना चाहूंगा। मेरे अनुसंधान में वित्तीय मदद के लिए सेंटर ऑफ लिबरेटेरियन स्टडीज का शुक्रिया, जिसने 1983-84 के दौरान लुडविग वोन मिसेस फेलोशिप (ह्यूमेनिटीज एंड सोशल साइंसेज) दी। निश्चित ही इस सबसे जो हुआ उसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूं।

नोट्स

1. द सी एंड द मिरर, 1942-1944।

2. देखें हिग्स (1987, अध्याय 1), पिछली सदी में सरकारों के विकास के बारे में परिकल्पनाओं के एक निर्णायक जायजे के लिए।

3. दूसरे जिन्होंने राह पर निर्भरता का महत्व समझा उनमें नटर (1883, पेज 44, 97) और अल्ट व क्रिस्टल (1983, पेज 248) शामिल हैं।

4. सरकार के विकास को नापने के लिए संक्षेप परीक्षण, देखें हिग्स (1983ए)। मैं वहां (पेज 155) यह निष्कर्ष देता हूं, "सरकार के आकार को लेकर मौजूद सभी परिमाणात्मक सूचकांकों में एक समान खामी होती हैः उनके परिवर्तन या तो सरकार के अधिकार क्षेत्र में परिवर्तन बताती है या फिर सरकार के एक तय अधिकार क्षेत्र में प्रभाव में अंतर को? मात्रात्मक सूचकांकों के मामले में तो सरकार के अधिकारों में बड़े परिवर्तन के बाद भी हल्का या शायद कोई भी परिवर्तन ही न देखने को मिले।"

5. सरकार के विकास के मामले में कुछ तुलनात्मक अंतरराष्ट्रीय आंकड़े देखने के लिए देखें, कुजनेट्स (1966, पेज 236-239), पेथिरेन और ब्लेड्स (1982) और अल्ट व क्रिस्टल (1983, पेज 199-219)।
6. आर्थिक फैसलों पर ज्यादा अधिकार रखने वाली बड़ी सरकार और संसाधनों को झोंकने में सक्षम बड़ी सरकार के बीच मेरे द्वारा किया गया अंतर, साथ ही मेरा बाद की स्थिति का विश्लेषण ही इस बात का खुलासा कर देगा कि क्यों मेरे पेपर में आर्थिक और मौद्रिक नीतियों, घाटे, मुद्रास्फीति, केनेसियनिज्म और संबंधित मामलों का ज्यादा जिक्र नहीं है जो सरकार की व्यापक अर्थव्यवस्था की नीतियों के कारण होती हैं, न तो किसी संकट काल का और न ही 20वीं सदी के किसी अन्य कालखंड का। अमेरिकी सरकार के पास आर्थिक और मौद्रिक नीतियों के निर्धारण का अधिकार था। शुरूआत से ही बजट घाटे को झेलने की और नगदी आरक्षित निधि के इस्तेमाल का। निश्चित ही सरकार ने जानबूझकर इन अधिकारों के संदर्भ में 1930 तक एक कर्मठ, प्रबंधकीय रूख नहीं अपनाया, खासतौर पर 1937-38 की मंदी के बाद (स्टेन, 1969, 1984)। लेकिन उस परिवर्तन ने अधिकार के प्रयोगों का एक अलग ही तरीका अपनाया, जो मेरी राय की बड़ी सरकार से मेल नहीं खाता।
7. सरकार की स्वायत्तता का महत्व समझने वाले अन्य लोगों में नाइट (1982,पेज 231), काल्ट (1981, पेज 580-583), ब्राउन (1983, पेज 45), टलक (1983, पेज 114) और फ्रे (1978, पेज 95, 155) शामिल थे। इस मुद्दे के पूर्ण और सावधानीपूर्वक विश्लेषण के लिए और उपयोगी आर्थिक सामग्री और अनुभव आधारित उपयोग के लिए देखें, ट्वाइट (1983)।
8. बेकर (1983, पेज 373, 381-388) से तुलना कीजिए। बेकर के मॉडल में लोगों को न केवल सकल आर्थिक बोझ का जानकार माना जाता है बल्कि उनके राजनीतिक व्यवहार का आधार भी यही माना जाता है। बेकर अपनी मान्यताओं के संबंध में कोई अनुभव आधारित प्रमाण पेश नहीं करते, जो मुझे काफी लहरी प्रवृत्ति का काम लगता है।
9. थेलर (1983, पेज 64, 65) के "एनडावमेंट इफेक्ट", हार्डेन (1982, पेज 82, 83) के "हिस्टेरेसिस", अल्ट व क्रिस्टल (1983, पेज 196, 197) में संबंधित चर्चा को देखें।
10. प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के सिद्धांत के लिए देखें मेन्सफील्ड (1968) और रोजेनबर्ग (1971, 1976)। राजनीतिक अर्थशास्त्र और आर्थिक इतिहास के संदर्भ में विचारधारा की संकल्पना को समझने के लिए मेरी आगामी पुस्तकें देखें, अध्याय तीन और यहां बताए गए ढेर सारे स्रोत। हिग्स (1983 बी) और क्रेडिटर (1983) के बीच संवाद भी देखिए।
11. रॉबिनसन, जेफर्स, "केसांड्रा," 1948 (पंक्तियों की नए सिरे से जमावट के लिए माफी चाहता हूं)।

रेफरेन्सस:

- अल्चियाँ, ए. ए., ऐंड एलेन, डब्ल्यू. आआर. (1972). यूनिवर्सिटी इकोनॉमिक्स: एलिमेंट्स ऑफ इंक्वाइरी (तीसरा संस्करण). बेल्मॉट, कालीफ़.: वाड्सवर्थ.

- ऑल्स्टन, एल. जे. (1984), *"फार्म फॉरक्लोषर मॉरेटोरियम लेजिस्लेशन: अ लेसन फ्रॉम दि पास्ट."* अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू74, 445-457.
- अल्ट, जे. ई. (1983), *"दि एवोल्यूशन ऑफ टैक्स स्ट्रक्चर्स."* पब्लिक चॉय्स 41, 181-222.
- अल्ट, जे. ई., ऐंड क्रिस्टल, के. ए. (1983), पोलिटिकल इकोनॉमिक्स, बर्क्ली: यूनिवर्सिटी ऑफ कॅलिफॉर्निया प्रेस.
- ऐंडर्सन, एम. (एड.) (1982), *दि मिलिटरी ड्राफ्ट: सेलेक्टेड रीडिंग्स ओं कन्सक्रिप्शन. स्टॅनफर्ड,* कालीफ़.: हूवर इन्स्टिट्यूशन प्रेस
- बेकर, जी. एस. (1983), "आ थियरी ऑफ कॉंपिटेशन अमॉंग प्रेशर ग्रूप्स फॉर पोलिटिकल इन्फ्लुयेन्स," क्वॉर्टर्ली जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स 98, 371-400.
- बेनेट, जे. टी., ऐंड जॉनसन, एम. एच. (1980), *दि पोलिटिकल इकोनॉमी ऑफ फ़ेडरल गवर्नमेंट ग्रोथ: 1959-1978.* कॉलेज स्टेशन, टेक्स.: सेंटर फॉर एजुकेशन ऐंड रिसर्च इन फ्री एंटरप्राइज़.
- बोर्छेरदिंग, टी. ई. (1977). "दि सोर्सस ऑफ ग्रोथ ऑफ पब्लिक एक्सपेंडिचरर्स इन दि युनाइटेड स्टेट्स 1902-1970." *बजट्स ऐंड ब्यूरोक्रेट्स: दि सोर्सस ऑफ गवर्नमेंट ग्रोथ* (टी. ई बोर्छेरदिंग, एड.). डरहम: ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस.
- ब्राउन, एल. डी. (1983), न्यू पॉलिसीस, न्यू पॉलिटिक्स: गवर्नमेंट्स रेस्पॉन्स टु गवर्नमेंट्स ग्रोथ. वॉशिंगटन: ब्रुकैंग्स.
- चांड्लर, एल. वी. (1970), अमेरिकाज़ ग्रेटेस्ट डिप्रेशन, 1929-1941. न्यू यॉर्क: हार्पर ऐंड रो
- क्लेटन, जे. एल. (एड.) (1970), *दि इकोनॉमिक इंपॅक्ट ऑफ दि कोल्ड वॉर: सोर्सस ऐंड रीडिंग्स.* न्यू यॉर्क: हार्कोर्ट, ब्रेस ऐंड वर्ल्ड.
- कफ, आआर. डी. (1973), *दि वॉर इंडस्ट्रीज़ बोर्ड: बिज़्नेस-गवर्नमेंट रिलेशन्स ड्यूरिंग वर्ल्ड वॉर* आई. बॉल्टिमुर, जोन्स हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस.

- डेविड, पी. ए. (1975), *टेक्निकल चॉय्स, इनोवेशन, ऐंड इकोनॉमिक ग्रोथ: एस्सेज़ ओं अमेरिकन ऐंड ब्रिटिश एक्सपीरियेन्स इन दि नाइंटींथ सेंचुरी*. न्यू यॉर्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- डेविस, एल. ई. (1980), "इट्स ए लोंग, लोंग रोड टु टिप्परारी" या "रिफ्लेकशन्स ओंन ऑर्गनाइज़्ड वायलेन्स", "प्रोटेक्षन रेट्स", "दि न्यू पोलिटिकल हिस्ट्री." *जर्नल ऑफ इकोनॉमिक हिस्ट्री* 40, 1-16.
- डाइ, टी. आआर. (1975), *अंडरस्टॅंडिंग पब्लिक पॉलिसी* (दूसरा संस्करण). एंगलेझूड क्लिफ्स, एन.जे.: प्रेंटिस-हॉल.
- डाइ, टी. आआर., ऐंड ज़ाइग्लर, एल. एच. (1981), *दि आइरनी ऑफ डेमॉक्रेसी: आन अनकॉमन इंट्रोडक्शन टु अमेरिकन पॉलिटिक्स* (5वां संस्करण). मॉनटरे: डक्स्बरी प्रेस.
- एडल्मन, एम. (1964), *दि सिंबॉलिक यूज़ेस ऑफ पॉलिटिक्स.* उरबाना: यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनाय प्रेस.
- फैब्रिकेंट, एस. (1952), *दि ट्रेंड ऑफ गवर्नमेंट एक्टिविटी इन दि युनाइटेड स्टेट्स सिन्स 1900*. न्यू यॉर्क: नैतोनल ब्यूरो ऑफ इकोनॉमिक रिसर्च.
- फ्रीडेल, एफ. (1973), *फ्रॅंक्लिन डी. रूज़वेल्ट: लॉंचिंग दि न्यू डील*. बॉस्टन: लिटल, ब्राउन.
- फ्रे, बी. एस. (1978), *मॉडर्न पोलिटिकल इकोनॉमी*, ऑक्स्फर्ड: मार्टिन रॉबर्टसन.
- फ्रीडमेन, एम., ऐंड श्वॉट्ज़, ए. जे. (1963), "*ए मॉनिटरी हिस्ट्री ऑफ दि युनाइटेड स्टेट्स", 1867-1960*. प्रिन्स्टन, एन.जे.: प्रिन्स्टन यूनिवर्सिटी प्रेस.
- फ्रीडमेन, एम., ऐंड फ्रीडमेन, आआर. (1984), *टाइरनी ऑफ दि स्टेटस को*. न्यू यॉर्क: हार्कोर्ट ब्रेस जोवनविच.
- फ्यूक्स, वी. आआर. (1979), "दि इकोनॉमिक्स ऑफ हेल्त इन ए पोस्ट-इंडस्ट्रियल सोसाइटी." पब्लिक इंटेरेस्ट. समर, 3-20.
- गर्बर, एल. जी. (1983), *दि लिमिट्स ऑफ लिबरलिज़म: जोज़ेफस डॅनियल्ज़, हेन्री स्टिमसन,*

बर्नार्ड बार्यूक, डोनल्ड रिचबर्ग, फीलिक्स फ्रैंकफर्टर ऐंड दि डेवेलपमेंट ऑफ दि मॉडर्न अमेरिकन पोलिटिकल इकोनॉमी. न्यू यॉर्क: न्यू यॉर्क यूनिवर्सिटी प्रेस.

- हेनरेहेन, जे. डी. (1983), *गवर्नमेंट बाइ कांट्रैक्ट*. न्यू यॉर्क: नॉर्टन.
- हार्डिन, आर. (1982), *कलेक्टिव एक्शन*. बॉलटिमोर: जोन्स हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस.
- हॅरिस, एस. ई. (1945), प्राइस *ऐंड रिलेटेड कंट्रोल्स इन दि युनाइटेड स्टेट्स*. न्यू यॉर्क: मैकग्रा-हिल.
- हॉली, ए. (1981), "थ्री फॅसेट्स ऑफ हूवेरियन अस्सोसिशनलिज़्म: लम्बर, एवियेशन, मूवीज़, 1921-1930." *इन रेग्युलेशन इन पर्स्पेक्टिव: हिस्टॉरिकल एस्सेज़* (टी. के. मैकग्रा-हिल, एडि.). केंब्रिज, मास.: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी. प्रेस.
- हायक, फ. ए. (1972), *दि कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ लिबर्टी*. शिकागो: हेन्री रेगनेरी.
- हेनेर, आर. ए. (1983), "दि ऑरिजिन ऑफ प्रिडिक्टबल बिहेवियर." अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू 73, 560-595.
- हर्मन, ई. एस. (1981), कॉर्पोरेट कंट्रोल, कॉर्पोरेट पावर. न्यू यॉर्क: केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- हिक्स, जे. आर. (1946), वैल्यू ऐंड कॅपिटल: *एन इंक्वाइरी इंटु सम फंडमेंटल प्रिन्सिपल्स ऑफ इकोनॉमिक थियरी* (दूसरा एडिशन). ऑक्स्फर्ड: क्लेरंडन.
- हिग्ग्स, आर. (1983ए), "वेयर फिगर्स फैल: मेजरिंग दि ग्रोथ ऑफ बिग गवर्नमेंट." फ्रीमेन 33, 151-156.
- हिग्ग्स, आर. (1983बी), "वेन आइडियलॉजिकल वल्ड्र्स कोलाइड: रिफ्लेकशन्स ओं क्रादिटोर्स 'रॅडिकल पर्सूएशन.'" कंटिन्यूयिटी, 99-112.
- हिग्ग्स, आर. (1987), *क्राइसिस ऐंड लेवाइयथन: क्रिटिकल एपिसोड्स इन दि ग्रोथ ऑफ अमेरिकन गवर्नमेंट*. न्यू यॉर्क: ऑक्स्फर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- हिर्षलेफेर, जे. (1976), *प्राइस थियरी ऐंड इट्स अप्लिकेशन्स*, एंगलेऊड क्लिफ्स, न.जे.: प्रेंटिस-हॉएल.

- हुवर, सी. बी. (1959), *दि इकोनॉमी, लिबर्टी ऐंड दि स्टेट*. न्यू यॉर्क: ट्वेंटियेथ सेंचुरी फंड.
- ह्यूग्स, जे. आर. टी. (1977), *दि गवर्नमेंटल हॅबिट: इकोनॉमिक कंट्रोल्स फ्रॉम कोलोनियल टाइम्स टु दि प्रेज़ेंट*. न्यू यॉर्क: बेसिक बुक्स.
- ह्यूग्स, जे. आर. टी. (1983), *अमेरिकन इकोनॉमिक हिस्ट्री*. ग्लेनवीएव: स्कॉट, फोरस्मान.
- कल्ट, जे. प. (1981), "*पब्लिक गूड्स ऐंड दि थियरी ऑफ गवर्नमेंट*." केटो जर्नल 1, 565-584.
- कल्ट, जे. पी., ऐंड ज़ूपन, एम. ए. (1984), "*कॅप्चर ऐंड आइडीयालजी इन दि इकोनॉमिक थियरी ऑफ पॉलिटिक्स.*" अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू 74, 279-300.
- केनेडी, डी. एम. (1980), *ओवर हियर: दि फर्स्ट वर्ल्ड वॉर ऐंड अमेरिकन सोसाइटी*. न्यू यॉर्क: ऑक्स्फर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- नाइट, फ. एच. (1982), फ्रीडम *ऐंड रिफॉर्म: एस्सेज़ इन इकोनॉमिक्स ऐंड सोशियल फिलॉसोफी*. इनडियनापॉलिस: लिबर्टी प्रेस.
- क्रादिटोर, ए. एस. (1983), "रॉबर्ट हिग्ग्स ओं 'दि रॅडिकल पर्सूयेशन.'" कंटिन्यूयिटी, 113-123.
- कुज़्नेट्स, एस. (1966), *मॉडर्न इकोनॉमिक ग्रोथ: रेट, स्ट्रक्चर, ऐंड स्प्रेड.* न्यू हेवन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस.
- ल्युशटेनबर्ग, डब्ल्यू. ई. (1963), *फ्रॅंक्लिन डी. रूज़वेल्ट ऐंड दि न्यू डील*, 1932-1940. न्यू यॉर्क: हार्पर ऐंड रो.
- ल्युशटेनबर्ग, डब्ल्यू. ई. (1964), "दि न्यू डील ऐंड दि एनालॉग ऑफ वॉर."*इन चेंज ऐंड कंटिन्यूयिटी इन ट्वेंटियेथ-सेंचुरी अमेरिका* (जे. ब्रेमन, आर. एच. ब्रेम्नर, ऐंड ए. वॉलटर्स, एड्स.). कोलमबस, ओहाइयो; ओहाइयो स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मॅन्सफील्ड, ए. (1968), *दि इकोनॉमिक्स ऑफ टेक्नोलॉजिकल चेंज*. न्यू यॉर्क: नॉर्टन.
- मैकैंजी, आर. बी., ऐंड ट्युलॉक, जी. (1975), *दि न्यू वर्ल्ड ऑफ इकोनॉमिक्स:*

एक्सप्लोरेशन्स इंट्र दि ह्यूमन एक्सपीरियेन्स. होमवूड, इएल.: इविन.

- मार्शल, एल. सी. (1918), "दि वॉर लेबर प्रोग्राम ऐंड इट्स एडमिनिस्ट्रेशन." जर्नल ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी 26, 425-460.
- मेल्मन, एस. (1970), *पेंटागॉन कॅपिटलिज़मः दि पोलिटिकल इकोनॉमी ऑफ वॉर*. न्यू यॉर्कः Mcग्रव-हिएल.
- मेलंान, एस. (1974), *दि पर्मनेंट वॉर इकोनॉमीः अमेरिकन कॅपिटलिज़म इन डिक्लाइन*. न्यू यॉर्कः सिमोन ऐंड शस्टर.
- मेल्ट्ज़र, ए. एच., ऐंड रिचर्ड, एस. फ. (1978), *"वाइ गवर्नमेंट ग्रोस (ऐंड ग्रोस) इन ए डेमॉक्रेसी."* पब्लिक इंटेरेस्ट, समर, 111-118.
- मेल्ट्ज़र, ए. एच., ऐंड रिचर्ड, एस. एफ. (1983), "टेस्ट्स ऑफ ए रॅशनल थियरी ऑफ दि साइज़ ऑफ गवर्नमेंट." पब्लिक चॉय्स 41, 403-418.
- मिटनिकक, बी. एम. (1980), *दि पोलिटिकल इकोनॉमी ऑफ रेग्युलेशनः क्रियेटिंग, डिज़ाइनिंग, ऐंड रिमूविंग रेग्युलेटरी फॉर्म्स*. न्यू यॉर्कः कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मर्फी, पी. एल. (1972), *दि कॉन्स्टिट्यूशन इन क्राइसिस टाइम्स*, 1918-1969. न्यू यॉर्कः हार्पर टॉर्चबुक्स.
- नादरी एएम. आई. (1970), "सम अप्रोचस टु दि थियरी ऐंड मेज़रमेंट ऑफ टोटल फॅक्टर प्रोडक्टिविटीः अ सर्वे."जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर 8, 1137-1177.
- नेविंस, ए. (1932), *ग्रोवर क्लीवलैंडः ए स्टडी इन करेज*. न्यू यॉर्कः डॉड, मीड.
- नॉर्डलिंगर, ए. ए. (1981), *ऑन दि अटॉनमी ऑफ दि डेमॉक्रेटिक स्टेट*. कैम्ब्रिज, माएस.: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- नॉर्थ, डी. सी. (1978), "स्ट्रक्चर ऐंड पर्फॉर्मेन्सः दि टास्क ऑफ इकोनॉमिक हिस्ट्री." जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर 16, 963-978.

- नॉर्थ, डी. सी. (1979), “ए फ्रेम्वर्क फॉर आनालाइज़िंग दि स्टेट इन इकोनॉमिक हिस्ट्री.” एक्सप्लोरेशन्स इन इकोनॉमिक हिस्ट्री 16, 249-259.
- नॉर्थ, डी. सी. (1981), *स्ट्रक्चर ऐंड चेंज इन इकोनॉमिक हिस्ट्री*. न्यू यॉर्क: नॉर्टन.
- नटर, जी. डब्ल्यू. (1983), *पोलिटिकल इकोनॉमी ऐंड फ्रीडम: ए कलेक्शन ऑफ एस्सेज़* (जे. सी. नटर, एड.). इंडियनापॉलिस: लिबर्टी प्रेस.
- आय, डब्ल्यू. वाय. (1967), “दि इकोनॉमिक कॉस्ट ऑफ दि ड्राफ्ट.” अमेरिकन इकोनॉमिक रिव्यू 57, 39-62.
- ऑमस्टीड, ए. एल., ऐंड गोल्डबर्ग, वी. प. (1975), “इन्स्टिट्यूशनल चेंज ऐंड अमेरिकन इकोनॉमिक ग्रोथ: ए क्रिटीक ऑफ डेविस ऐंड नॉर्थ.” एक्सप्लोरेशन्स इन इकोनॉमिक हिस्ट्री 12, 193-210.
- ओल्सॉन, एम. (1982), *दि राइज़ ऐंड डिक्लाइन ऑफ नेशन्स: इकोनॉमिक ग्रोथ, स्टैग्फ्लेशन ऐंड सोशल रिजिडिटीज़*. न्यू हेवन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस.
- पाथिराने, एल., ऐंड ब्लेड्स, डी. डब्ल्यू. (1982), “डिफाइनिंग ऐंड मेज़रिंग दि पब्लिक सेक्टर: सम इंटरनेशनल कंपॅरिज़न्स.” रिव्यू ऑफ इनकम ऐंड वेल्थ 28, 161-289.
- पेल्ट्ज़्मान, एस. (1980), “दि ग्रोथ ऑफ गवर्नमेंट.” जर्नल ऑफ लॉ ऐंड इकोनॉमिक्स 23, 209-287.
- पिवेन, एफ. एफ., ऐंड क्लोवर्ड, आर. ए. (1982), दि न्यू क्लास वार. न्यू यॉर्क: पैंदियान
- पोलेनबर्ग, आर. (1972), *वॉर ऐंड सोसाइटी: दि युनाइटेड स्टेट्स*, 1941-1945. न्यू यॉर्क: लिप्पिनकोत्त.
- पॉपर, के. आर. (1964), *दि पॉवर्टी ऑफ हिस्ट्रिसिज़्म*. न्यू यॉर्क: हार्पर टॉर्चबुक्स.
- पोर्टर, बी. डी. (1980), “पारकिनसन्स लॉ रिविज़िटेड: वॉर ऐंड दि ग्रोथ ऑफ अमेरिकन गवर्नमेंट.” पब्लिक इंटेरेस्ट, समर, 50-68.
- रदोष, आर., ऐंड रोथबर्ड, एम. एन. (एडिशंस.) (1972), *ए न्यू हिस्ट्री ऑफ लेवाइयथन:*

एस्सेज़ ऑन दि राइज़ ऑफ दि अमेरिकन कॉर्पोरेट स्टेट. न्यू यॉर्क: डटन.

- रेनोल्ड्स, एम. ओ. (1984), *पावर ऐंड प्रिविलेज: लेबर यूनियन्स इन अमेरिका.* न्यू यॉर्क: यूनिवर्स बुक्स.
- रोज़ेनबर्ग, एन. (एड.) (1971), *दि इकोनॉमिक्स ऑफ टेक्नोलॉजिकल चेंज: सेलेक्टेड रीडिंग्स*. हार्मंडवर्थ: पेंग्विन.
- रोज़ेनबर्ग, न. (1976), *पर्स्पेक्टिव्स ऑन टेक्नोलॉजी*. न्यू यॉर्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- राउर्क,एफ. ई. (1976), *ब्युरोक्रेसी, पॉलिटिक्स, ऐंड पब्लिक पॉलिसी* (सेकंड एडिशन). बोस्टन: लिटल, ब्राउन.
- शम्पेटर, जे. ए. (1950), *कैपिटलिज़्म, सोशलिज़्म, ऐंड डेमॉक्रेसी* (थर्ड एडिशन.). न्यू यॉर्क: हार्पर ऐंड रो
- श्यूल्ट्ज़, जी. पी., ऐंड डेम, के. डब्ल्यू. (1977), *इकोनॉमिक पॉलिसी बियॉंड दि हेडलाइन्स*. न्यू यॉर्क: नॉर्टन.
- सिएगन, बी. एच. (1980), *इकोनॉमिक लिबर्टीस ऐंड दि कॉन्स्टिट्यूशन*. शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
- साउल, जी. (1947), *प्रॉस्पेरिटी डेकेड: फ्रॉम वॉर टु डिप्रेशन*, 1917-1929. न्यू यॉर्क, हार्पर ऐंड रो.
- स्टाइन, एच. (1969), दि *फिस्कल रेवोल्यूशन इन अमेरिका*. शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
- स्टाइन, एच. (1984), *प्रेसिडेन्शियल इकोनॉमिक्स: दि मेकिंग ऑफ इकोनॉमिक पॉलिसी फ्रॉम रूज़वेल्ट टु रीगन ऐंड बियॉंड*. न्यू यॉर्क: सिमोन ऐंड शस्टर.
- समनर, डब्ल्यू. जी. (1934), *एस्सेज़ ऑफ विलियम ग्राहम समनर* (ए. जी. केलर ऐंड एम. आर. डेवी, एड्स.). न्यू यॉर्क: येल यूनिवर्सिटी प्रेस.

- थेलर, आर. एच. (1983), “इल्लूज़न्स ऐंड मिराजस इन पब्लिक पॉलिसी.” पब्लिक इंटरेस्ट, फॉल, 60-74.
- ट्युलॉक, जी. (1983), “रिव्यू ऑफ मंकुर ओलसन, *दि राइज़ ऐंड डिक्लाइन ऑफ नेशन्स*.” पब्लिक चॉय्स 40, 111-116.
- ट्वाइट, सी. ए. एल. (1983), गवर्नमेंट मनिप्युलेशन ऑफ कॉन्स्टिट्यूशनल-लेवेल ट्रान्सॅक्शन कॉस्ट्स: आन इकोनॉमिक थियरी ऐंड इट्स अप्लिकेशनटुऑफ-बजेट एक्सपेंडिचर थ्रू दि फ़ेडरल फाइनान्सिंग बैंक, पीएच.डी. डिसरर्टेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ वॉशिंग्टन.
- ट्वाइट, सी. (1985), “यू. एस. रेग्युलेशन ऑफ इंटरनॅशनल ट्रेड: ए रेट्रोस्पेक्टिव इंक्वाइरी.”*इन एमर्जेन्स ऑफ दि मॉडर्न पोलिटिकल इकोनॉमी* (आर. हिग्ग्स, एड.). ग्रेनैच, कोन.: जाई प्रेस.
- यू. एस. ब्यूरो ऑफ दि बजट (1946), दि युनाइटेड स्टेट्स एट वॉर: डेवेलपमेंट ऐंड एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि वॉर प्रोग्राम बाइ दि फेडरल गवर्नमेंट. वॉशिंग्टन, डी.सी.: यू.एस. गवर्नमेंट. प्रिंटिंग ऑफीस.
- वेट्टर, एच. जी. (1979), “पर्स्पेक्टिव्स ऑफ दि फॉर्टी-सिक्स्थ एनिवर्सरी ऑफ दि यू. एस. मिक्स्ड इकोनॉमी.” *एक्सप्लोरेशन्स इन इकोनॉमिक हिस्ट्री* 16, 297-330.
- वीवर, सी. एल. (1983), “ऑन दि लॅक ऑफ ए पोलिटिकल मार्केट फॉर कंपल्सरी ओल्ड-ऐज इन्श्योरेन्स प्रायर टु दि ग्रेट डिप्रेशन: इनसाइट्स फ्रॉम इकोनॉमिक थियरीज़ ऑफ गवर्नमेंट.” एक्सप्लोरेशन्स इन इकोनॉमिक हिस्ट्री 20, 294-328.
- वीवर, प. एच. (1978), “रेग्युलेशन, सोशल पॉलिसी, ऐंड क्लास कॉन्फ्लिक्ट.” पब्लिक इंटरेस्ट, 45-63.
- वीडननबॉम, एम. एल. (1981), *बिजनेस, गवर्नमेंट, ऐंड दि पब्लिक* (2न्ड एड.). एंगलवूड क्लिफ्स, न.जे.: प्रेंटिस-हॉएल.

रॉबर्ट हिग्स *राजनीतिक अर्थशास्त्र में* ***द इंडिपेंडेंट इंस्टीट्यूट*** *के सीनियर फेलो हैं। इंस्टीट्यूट की त्रैमासिक जर्नल* ***द इंडिपेंडेंट रिव्यू*** *के संपादक भी हैं। उन्होंने जॉन हॉपकिंस यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र में पीएचडी की। वह यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन, लाफायेत कॉलेज, सीएटल यूनिवर्सिटी और प्राग की यूनिवर्सिटी ऑफ इकानॉमिक्स में पढ़ा चुके हैं। वे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी और स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी में विजिटिंग स्कॉलर हैं। वे हूवर यूनिवर्सिटी और नेशनल साइंस फाउंडेशन के फेलो हैं। वह कई किताबें भी लिख चुके हैं,* ***डिप्रेशन, वार एंड कोल्ड वार*** *सहित।*